शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 11 अंक : 11 1 जून 2019

(ज्येष्ठ-आषाढ़, विक्रम संवत् 2076)

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी : नौरंग सहाय
कार्यालय प्रभारी :
आलोक चतुर्वेदी : 8619935766

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

कोचिंग द्वारा शिक्षा का अवमूल्यन ❑ डॉ. राजेश कुमार जांगिड़

बाजार में प्रतियोगिता होना अच्छा है क्योंकि प्रतियोगिता से गुणवत्ता में सुधार होता है लेकिन निजी क्षेत्र का कार्यकरण भिन्न होता है। गुणवत्ता में सुधार की अपेक्षा गलत जानकारी, विज्ञापन व प्रचार द्वारा व बिना गुणवत्ता बढ़ाये लाभ बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। कोचिंग का प्रचलन सर्वोत्तम प्राकृतिक बुद्धि की अपेक्षा सर्वोत्तम प्रशिक्षित बुद्धि के चयन को अधिमान देता है। अवसरों की समानता को बाधित करता है। इस पर होने वाला व्यय अकुशल व अनुत्पादक होता है। इसका प्रभाव छात्र के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है तथा जो गुण विद्यालय शिक्षा के दौरान छात्र ग्रहण करता है तथा जो उसकी सामाजिकता को बढ़ाते हैं, कोचिंग व्यवस्था के कारण प्रतिकूल रूप में प्रभावित होते हैं।

6

अनुक्रम

4.	कोचिंग के मायाजाल में उलझी शिक्षा	- सन्तोष पाण्डेय
9.	ट्यूशन : आधुनिक स्टेट्स सिम्बल	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
11.	शिक्षा में प्रतिस्पर्धा बढ़ाते कोचिंग संस्थान	- डॉ. सुमनबाला
13.	कोचिंग के भरोसे भारतीय शिक्षा	- श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी
15.	माता-पिता दोराहे पर, बालक चौराहे पर	- श्रीमती भारती दशोरा
17.	बदलते स्वरूप में शिक्षण संस्थाएँ	- बजरंग प्रसाद मजेजी
19.	कोचिंग का मायाजाल	- प्रियंका कुमारी गर्ग
24.	Technical Education In Rajasthan	- Dr. A. K. Gupta
25.	अंकों की बरसात	- डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
27.	दुबारा स्पष्ट जनादेश के निहितार्थ	- सन्तोष पाण्डेय
29.	अहंकारी विशिष्ट बौद्धिक वर्ग की पराजय	- शंकर शरण
31.	योग शिक्षा : सार्थक शिक्षा	- डॉ. ओम प्रकाश पारीक
34.	जैव विविधता और पर्यावरण संरक्षण	- रामचन्द्र स्वामी
36.	गाँधी के सपनों के भारत की वर्तमान स्थिति	- प्रो. सतीश कुमार
38.	संस्कार-गृह(कुटुम्ब प्रबोधन : अध्याय-15)	- हनुमान सिंह राठौड़
41.	गतिविधि	

Coaching Culture and Education

❑ **Dr. T. S. Girishkumar**

As a matter of fact, coaching centres do not perform wonders, they simply train the minds of people for a given objective. To clear a medical entrance examination, there is an established pattern of techniques of training aspirants, to clear engineering entrance examinations, there is yet another technique and pattern of training and so on and so forth. Aspirants are repeatedly made to do hard work until they reach an expected level of clearing examinations. Such repeatedly repeating repetitions eventually lets the aspirant through examinations, provided an aspirant does not become fed up with the whole process and quits.

21

कोचिंग के मायाजाल में उलझी शिक्षा

❑ सन्तोष पाण्डेय

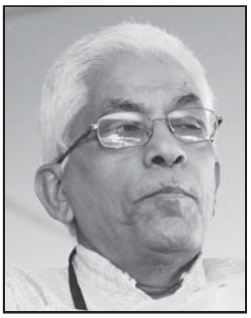

कोचिंग के संक्रामक रोग के परिणाम समाज के सामने आने लगे हैं। कोचिंग की चाहे कैसी भी महत्ता क्यों न हो क्या वह शिक्षा का विकल्प बन सकती है? कोचिंग व्यक्ति व परिवार के लिये हितकारी हो सकती है परन्तु समाज के लिये घातक ही है। कोचिंग सर्वव्यापी होने का परिणाम है कि देश की प्रतिभा का असमान व अनार्थिक विकास हो रहा है। इससे व्यक्तिगत व पारिवारिक आर्थिक लाभ की अपेक्षा व्यापक सामाजिक दुष्परिणाम अधिक घातक है। उच्च पैकेज व सुविधा वाली शिक्षा के लिये बहुत ही सीमित स्थान उपलब्ध हैं, ऐसे में वर्षों तक शिक्षा से विमुख होकर यदि सभी छात्र कोचिंग प्राप्त करने लगे, तब इस विशाल संख्या का एक अति सूक्ष्म भाग ही प्रवेश व प्रशिक्षण प्राप्त कर पायेगा।

संपादकीय

भारतीय जीवन दर्शन में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को ज्ञानवान, सुसंस्कृत एवं सामाजिक जीवन के अनुरूप मानव का निर्माण करना माना गया है। शिक्षा मनुष्य में छिपी हुई प्रतिभा को उजागर कर व रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरित कर व्यक्ति के जीवन में सफलता के सर्वोच्च स्तर तक ले जाने का सशक्त माध्यम है। सामान्य जीवन में शिक्षा मनुष्य को सचेत स्वाभिमानी व स्वावलंबी बनाने में योग देती है। परन्तु पश्चिमी संस्कृति के प्रभाववश आज देश में शिक्षा इन उद्देश्यों से भटक चुकी है। सदियों की दासता व बाद में मैकालयी शिक्षा पद्धति के प्रसार ने भारत में स्वावलंबन की भावना को तिरोहित कर दिया। आर्थिक पराभव व व्यापक गरीबी ने भारतीयों के जीवन से जोखिम उठाने की प्रवृत्ति को लगभग समाप्त कर दिया। ऐसे वातावरण में जिन पीढ़ियों का निर्माण हुआ वे जीवन पर्यन्त आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के माध्यमों की तलाश में लगे रहे। मैकालयी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का शासन की नौकरी करने के रूप में यह माध्यम नजर आया। स्वाभाविक परिणाम रहा कि शिक्षा आत्मलंबन व स्वावलंबन से पृथक हो गई। नौकरी प्राप्ति में सहायक होना शिक्षा प्राप्ति व प्रदान करने का मुख्य ध्येय या उद्देश्य हो गया। रोजगार व नौकरी समानार्थक बन गये। यह देश का दुर्भाग्य ही है कि आजादी के 70 वर्षों के उपरांत भी इस स्थिति व दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं हो सका है। वरन यह धारणा और पुष्ट ही हुई है। यह धारणा इस रूप में पुष्ट हुई है कि अब विविध प्रकार की शिक्षा चाहे वह प्रबंधकीय, चिकित्सकीय अथवा तकनीकी ही क्यों न हो नौकरी प्रदान करने वाली होनी चाहिये। नौकरी भी ऐसी होनी चाहिये जो केवल जीवन पर्यन्त आर्थिक सुरक्षा ही प्रदान नहीं करे वरन आर्थिक समृद्धि का साधन बने। दूसरी ओर स्वावलंबी व आत्मलंबी बनाने वाली शिक्षा स्वरोजगार के माध्यम से न सिर्फ स्वयं को रोजगार देती है, वरन अन्य लोगों के लिये रोजगार प्राप्ति में सहायक होती है। यह वह वृहद परिप्रेक्ष्य है जिसमें शिक्षा व कोचिंग संस्थान के संबंधों की विवेचना होनी चाहिये।

आज की शिक्षा व्यवस्था व रोजगार प्राप्ति में कोचिंग संस्थानों का प्रवेश अति व्यापक रूप में हो चुका है। आज उच्च तकनीकी संस्थानों में प्रवेश हेतु ही नहीं वरन अच्छे स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, चिकित्सा, शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, कानूनी शिक्षा में प्रवेश हेतु विशिष्ट कोचिंग प्रदान करने वाले व शत प्रतिशत गारंटी शुदा परिणाम देने का दम भरने वाले संस्थानों ने छात्रों व अभिभावकों को जकड़ रखा है। यही नहीं प्राथमिक शिक्षा में कतिपय संस्थानों में प्रवेश के लिये विशिष्ट कोचिंग संस्थान भी कार्य कर रहे हैं। किसी भी क्षेत्र में नौकरी के लिये भी परीक्षा कराना भर्ती प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन चुका है। नौकरी के इन विशिष्ट क्षेत्रों में परीक्षा पास कराने व वरीयता क्रम में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिये भी कोचिंग संस्थान जड़ जमा चुके हैं। अखिल भारतीय व राज्य स्तरीय सेवाओं के लिये ही नहीं वरन्, शिक्षक, क्लर्क, नर्सिंग, पैरामेडीकल, पटवारी, कांस्टेबल जैसी सामान्य व अल्प वेतन वाली नौकरी की परीक्षा की तैयारी के कोचिंग संस्थान चलन में आ चुके हैं। यह एक ऐसी संक्रामक बीमारी का रूप ग्रहण कर चुकी है जिसने शिक्षा के उद्देश्यों को गंभीर क्षति पहुँचायी है। शिक्षा को रोजगार व स्वावलम्बन से विलग कर नौकरी से घनिष्ठ रूप से जोड़ दिया है। इससे प्राप्त लाभ या उपलब्धि व्यक्तियों के लिये लाभदायक व जीवनदायिनी हो सकती है, परन्तु समग्र (Macro) रूप में समाज के तीव्र विकास व उद्देश्यपूर्ण शिक्षा प्राप्ति में बाधक है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को बाधित कर रही है।

देश में कोचिंग का प्रारंभ प्राइवेट ट्यूशन के रूप में प्रारंभ हुआ था, जिसमें शिक्षा में पढ़ाये जाने वाले विषयों में से दुरूह विषयों को सरलता से समझाने व कमजोर विद्यार्थियों को परीक्षा पास कराने योग्य बनाने का ध्येय प्रमुख था। यह कमजोर विद्यार्थियों को सामान्य योग्यता स्तर तक लाने के ध्येय तक सीमित था। परन्तु कालान्तर में यह अभिभावकों के लिये स्टेटस सिंबल बन गया। यहीं से विकृति आनी प्रारंभ हुई जो ट्यूशन प्राप्त कर्ता को अनुचित लाभ व चयनित श्रेष्ठ

प्रतिस्पर्द्धियों के बीच अस्वस्थ्य प्रतियोगिता के रूप में प्रकट हुई। इस प्रक्रिया का द्वितीय चरण तब प्रारंभ हुआ जब देश में ज्ञान की विशिष्ट शाखाओं यथा तकनीकी शिक्षा व मेडीकल शिक्षा में छात्रों व अभिभावकों को नौकरी के बेहतर अवसर व आर्थिक लाभ दृष्टिगोचर हुये। अब प्राइवेट ट्यूशन के स्थान पर विशिष्ट कोचिंग संस्थान सामने आये, जो विशिष्ट परीक्षा के लिये विशिष्ट प्रकार का शिक्षण व प्रशिक्षण प्रदान करता व अपना व्यापार लाभ बढ़ाने की दृष्टि से कमजोर व अपात्र को भी भारी विज्ञापन व मार्केटिंग तकनीकों द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर क्षमता से अधिक सफलता प्राप्ति की आशा जगाते हुये बड़ी संख्या में छात्रों व अभिभावकों की रुचि को प्रवेश की विवशता में बदलकर भारी आर्थिक लाभ अर्जित करने लगे। कोचिंग संस्थानों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। राजस्थान का कोटा शहर इसका प्रमुख उदाहरण है। आज नगर-नगर व शहर-शहर में जितने शिक्षण संस्थान हैं, लगभग उतने ही कोचिंग संस्थान मिल जायेंगे। कोचिंग की विभीषिका का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि आईआईटी या समकक्ष प्रवेश परीक्षा जो हायर सैकेण्डरी के बाद संपन्न होती है, के लिये विशिष्ट कोचिंग एक वर्ष पूर्व नहीं वरन् कक्षा 6 में प्रवेश के साथ ही प्रारंभ होने लगी है। वह दिन दूर नहीं है, नर्सरी व पूर्व नर्सरी से ही इन परीक्षाओं के लिये कोचिंग का दावा करने वाले संस्थान भी आगे आ सकते हैं।

प्रतिस्पर्द्धा श्रेयष्कर है, योग्यता एक विशिष्ट गुण है, परन्तु यह छात्र की व्यक्तिगत रुचि व विशिष्ट जीवन जीने की इच्छा से निर्देशित होना चाहिये, न कि अभिभावकों की महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं सामाजिक विवशता के रूप में। ऐसी शिक्षा प्राप्ति के उपरांत लाखों रुपयों के पैकेज के आकर्षण स्वाभाविक है। मध्यम व उच्च मध्यम वर्ग के लिये यह जीवन की सफलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। पैकेज के साथ साथ विदेशों में नौकरी, उच्च वेतन की अपेक्षायें देश की श्रेष्ठ प्रतिभा का संपूर्ण देश को लाभान्वित करने के बजाय केवल स्वयं के व्यक्तिगत हित व महत्त्वाकांक्षा को प्राथमिकता देना क्या शिक्षा का यही उद्देश्य रह जायेगा? बहुत ही गंभीर विचारणीय बिन्दु है।

कोचिंग के संक्रामक रोग के परिणाम समाज के सामने आने लगे हैं। कोचिंग की चाहे कैसी भी महत्ता क्यों न हो क्या वह शिक्षा का विकल्प बन सकती है? कोचिंग व्यक्ति व परिवार के लिये हितकारी हो सकती है परन्तु समाज के लिये घातक ही है। कोचिंग सर्वव्यापी होने का परिणाम है कि देश की प्रतिभा का असमान व अनार्थिक विकास हो रहा है। इससे व्यक्तिगत व पारिवारिक आर्थिक लाभ की अपेक्षा व्यापक सामाजिक दुष्परिणाम अधिक घातक है। उच्च पैकेज व सुविधा वाली शिक्षा के लिये बहुत ही सीमित स्थान उपलब्ध हैं, ऐसे में वर्षों तक शिक्षा से विमुख होकर यदि सभी छात्र कोचिंग प्राप्त करने लगे, तब इस विशाल संख्या का एक अति सूक्ष्म भाग ही प्रवेश व प्रशिक्षण प्राप्त कर पायेगा। शेष, विशाल प्रवेश वंचित संख्या में हताशा-निराशा क्या उन्हें वैकल्पिक श्रेष्ठ जीवन के साधन उपलब्ध करा पायेगी व समाज व अर्थव्यवस्था भी इस विशाल संख्या का उपयोग किस प्रकार वैकल्पिक रूप में कर पायेगी, इस पर नीति नियोक्ताओं को ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। कोचिंग का दूसरा महत्त्वपूर्ण दुष्प्रभाव यह है कि मध्यम व उच्च मध्यम वर्गीय परिवार कोचिंग पर जो भारी व्यय करते हैं, उससे उनका पारिवारिक जीवन क्या उतना संपन्न रह पाता है, जितना कोचिंग विहीन शिक्षा प्रदान करने पर होता है। स्थिति यह है कि एक समय था जब इस वर्ग का जीवन लक्ष्य एक मकान बनाना और पुत्रियों के विवाह के संसाधन जुटाने तक सीमित था, इसे त्यागकर बच्चों के कोचिंग की व्यय-व्यवस्था तक सीमित हो गया है। कोचिंग आज समाज की एक प्रकार की व्यवस्था बन चुकी है। जिसमें व्यक्तिगत रुचि व क्षमता विकास के लिये कोई स्थान नहीं है। परिवार से अलग रहकर विद्यार्थी की मन:स्थिति क्या होती है इसका अनुमान लगाने में अभिभावक असमर्थ रहते हैं। लक्ष्य प्राप्ति के लिये समस्त क्षमता का उपयोग उन्हें समाज व परिवार से पृथक कर एकाकी बना देता है। वे व्यक्तिवादी, महत्त्वाकांक्षी व बड़ी सीमा तक स्वयं तक सीमित रहने वाले बन जाते हैं। परिवार के प्रति दायित्व, समाज प्रतिदान के प्रति उपेक्षा का भाव पुष्ट होता है। क्या ऐसी समाज रचना शिक्षा का उद्देश्य है। छात्र की अभिरुचि के विपरीत अभिभावकों की इच्छापूर्ति के लिये विशिष्ट कोचिंग में जाना तथा वहाँ के कार्यभार व कार्य संस्कृति से तालमेल न बैठाने के कारण प्रतिवर्ष होने वाली आत्महत्यायें क्या समाज को व्यथित नहीं करती हैं। क्या कोचिंग के लिये हायर सैकेण्डरी शिक्षा में बढ़ती डमी प्रवृत्ति को गंभीरता से नहीं लिया जाना चाहिये? क्या कोचिंग संस्थानों का वातावरण शिक्षण संस्थानों के समान उन्मुक्त, व्यक्तित्व को विविधता प्रदान करने वाला एवं सुरक्षित होता है। हाल ही में सूरत में असुरक्षित स्थान पर कोचिंग संचालन का दुष्परिणाम 22 छात्रों को अपने प्राण गँवा कर भोगना पड़ा है। क्या शिक्षा जो कि एक मिशन या सेवा भाव से संचालित होती है, को कोचिंग के माध्यम से एक अत्यन्त लाभकारी आर्थिक व्यवसाय या उद्योग के रूप में परिवर्तित होने की स्वीकृति समाज व सरकार द्वारा दी जाय, ऐसे गंभीर पहलू हैं जिन पर गंभीर चिन्तन मनन आवश्यक है। तात्कालिक रूप से कोचिंग संस्थानों के कार्यकरण पर निगरानी व नियंत्रण के लिये नियामकीय व्यवस्था की स्थापना आवश्यक है। दीर्घ कालिक रूप में शिक्षा के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन अपेक्षित है। शिक्षा मात्र किताबी व डिग्री दिलाने वाली नहीं हो वरन शिक्षा को स्वावलंबन व स्वरोजगार से जोड़ने के लिये शिक्षा के स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन आवश्यक है। ऐसा होने पर ही देश के मानवीय संसाधनों के समतापूर्ण आवंटन को सुनिश्चित किया जा सकेगा व जीवन पर्यन्त आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकेगा। q

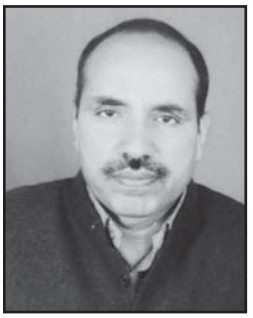

बाजार में प्रतियोगिता होना अच्छा है क्योंकि प्रतियोगिता से गुणवत्ता में सुधार होता है लेकिन निजी क्षेत्र का कार्यकरण भिन्न होता है। गुणवत्ता में सुधार की अपेक्षा गलत जानकारी, विज्ञापन व प्रचार द्वारा व बिना गुणवत्ता बढ़ाये लाभ बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। कोचिंग का प्रचलन सर्वोत्तम प्राकृतिक बुद्धि की अपेक्षा सर्वोत्तम प्रशिक्षित बुद्धि के चयन को अधिमान देता है। अवसरों की समानता को बाधित करता है। इस पर होने वाला व्यय अकुशल व अनुत्पादक होता है। इसका प्रभाव छात्र के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है तथा जो गुण विद्यालय शिक्षा के दौरान छात्र ग्रहण करता है तथा जो उसकी सामाजिकता को बढ़ाते हैं, कोचिंग व्यवस्था के कारण प्रतिकूल रूप में प्रभावित होते हैं।

कोचिंग द्वारा शिक्षा का अवमूल्यन

❑ डॉ. राजेश कुमार जांगिड़

उच्च शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्य माने गए हैं। एक, वर्तमान में उपलब्ध ज्ञान को नई पीढ़ी तक पहुँचाना तथा दो, नये ज्ञान का सृजन करना। विद्यमान ज्ञान का हस्तान्तरण अध्ययन अध्यापन के द्वारा होता है तथा नये ज्ञान का सृजन, जो ज्ञान के क्षितिज का विस्तार करता है अनुसंधान से जुड़ा हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में बड़े आकार में ऐसे संस्थान कार्यरत हैं, जो इन दोनों कार्यों से इतर केवल प्रतियोगी परीक्षा में सफलता, देश के प्रमुख अभियांत्रिकी, चिकित्सा संस्थानों तथा प्रतिष्ठित केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में प्रवेश तथा अकादमिक परीक्षा में उच्च श्रेणी प्राप्त कराने के लिए कार्यरत हैं। ये संस्थान पूरी तरह से निजी क्षेत्र में कार्यरत हैं तथा लाभ अर्जन करना इनका एक मात्र उद्देश्य है। इन संस्थानों का कार्यकरण शिक्षा की प्रकृति से मेल नहीं खाता। शिक्षा से विशेषकर उच्च शिक्षा से ज्ञान प्राप्त करने वाला (व्यक्ति) व समाज लाभान्वित होता है। शिक्षा से मिलने वाले सामाजिक लाभ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये कोचिंग संस्थान शिक्षा से उच्च आय अर्जन के रूप में मिलने वाले निजी लाभ को प्राप्त करने की प्रतियोगिता में अग्रणी रहने तथा इन लाभों से वंचित हो जाने के भय का दोहन करते हैं।

आधुनिक पाश्चात्य आर्थिक साहित्य में शिक्षा को सार्वजनिक रूप से प्रदान की जाने वाली निजी वस्तु माना गया है। स्टिग्लिज उच्च शिक्षा को सार्वजनिक रूप से प्रदान की जाने वाली निजी वस्तु मानते हैं। शिक्षा आर्थिक रूप से निजी व सार्वजनिक वस्तु है। निजी वस्तु इस कारण से कि जो शिक्षा के लिए भुगतान नहीं करता उसे इसके उपयोग से वंचित किया जा सकता है तथा सार्वजनिक वस्तु इसलिए क्योंकि शिक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने के साथ बेहतर समाज का निर्माण होता है, जिसका लाभ पूरे समाज को प्राप्त होता है तथा किसी को इस लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक वस्तु के मामले में निजी सेवा प्रदाता अनुकूलतम से कम उत्पादन करता है क्योंकि सार्वजनिक वस्तु का उत्पादक वस्तु के उत्पादन की लागत को निश्चित रूप से

जानता है लेकिन इसका क्रेता इसके लिए कितना भुगतान कर सकता है, को नहीं जानता। सरकार की कई गतिविधियाँ, यह आवश्यक नहीं कि बाजार की असफलता को सही करें अथवा आय वित्तरण में सुधार लायें। सरकार सामाजिक मूल्यों की स्थापना के लिए कुछ कार्यों को प्रोत्साहन देती है इनमें शिक्षा प्रमुख है इसलिए शिक्षा को सामाजिक अच्छाई कहा जाता है। इसके विपरीत सरकार कुछ कार्य करने को हतोत्साहित करती है जैसे नशे के उपयोग को सरकार हतोत्साहित करती है। सरकार का इस तरह का हस्तक्षेप उपभोक्ता की सार्वभौमिकता में हस्तक्षेप माना जाता है लेकिन सरकार के हस्तक्षेप के पीछे सामाजिक कल्याण का विचार प्रमुख होता है। रिचर्ड मसग्रेव शिक्षा को मेरिट की वस्तु मानते हैं क्योंकि यह सारे समाज की प्राथमिकता होती है तथा इसके सामाजिक लाभ निहित होते हैं। (रिचर्ड मसग्रेव 1989)। उच्च शिक्षा में सार्वजनिक व निजी वस्तु दोनों के गुण निहित होते हैं। निजी व्यक्ति इसकी माँग इसलिए करता है क्योंकि इससे निजी लाभ प्राप्त होता है साथ ही इससे समाज को बाह्यताएँ भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा को विश्वास (credence) वस्तु माना जाता है। आगत व निर्गत के मध्य तकनीकी संबंध उत्पादन फलन होता है। शिक्षा के उत्पादन को उत्पादन फलन के समकक्ष नहीं माना जा सकता क्योंकि शिक्षा के उत्पादन में इसके उपभोगकर्ता (विद्यार्थी) को इसे प्राप्त करने के लिए (उत्पादन के लिए) सक्रिय भूमिका का निर्वाह करना होता है साथ ही इसका उत्पादक (शिक्षक) मात्र सूचना प्रदाता नहीं होता। वह छात्रों के विचारों को प्रोत्साहन देता है तथा नई समझ पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। शिक्षा स्थानिक वस्तु मानी गई है। क्योंकि शिक्षा के स्तर का संबंध शिक्षण संस्थान से जोड़ा जाता है यह ठीक वैसा ही है जैसे प्राचीन काल में भारत में गुरुकुल के नाम से विद्यार्थी का मूल्यांकन होता था। शिक्षा के मामले में अर्थात् शिक्षा के उत्पादन में बाजार का कार्यकरण असफल रहता है क्योंकि शिक्षा में सार्वजनिक वस्तु की विशेषताएँ निहित होती है, इससे बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है, सूचना अपूर्ण रहती है तथा बेरोजगारी व समष्टि आर्थिक व्यवधान उपस्थित रहते हैं।

जोसेफ स्टिग्लिट्ज शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की व्यवस्थित असफलता के लिए सीमित सूचना, सरकार की क्रियाओं के प्रति निजी क्षेत्र की प्रतिक्रिया पर सरकार का सीमित नियंत्रण, राजनीतिक प्रक्रिया की प्रणाली तथा नौकरशाही पर सीमित नियंत्रण को उत्तरदायी मानते हैं (स्टिग्लिट्न, 2010)। बाजार का कार्यकरण चाहे कितना भी कुशल हो वह सामाजिक स्तर की समानता को सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

कोचिंग का आरंभ

शिक्षण संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन में एकरूपता की कमी तथा शिक्षा की गुणवत्ता व परीक्षा में प्राप्त अंकों के मध्य संबंध कमजोर होने के कारण देश में प्रतिष्ठित उच्च अध्ययन के संस्थानों में प्रवेश व रोजगार प्राप्ति का आधार अकादमिक परीक्षा में प्राप्त अंकों के स्थान पर प्रतियोगी परीक्षा होने लगी। भारतीय तकनीकी संस्थानों, राष्ट्रीय तकनीकी संस्थानों, केन्द्रीय विश्वविद्यालयों तथा अन्य प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रवेश के लिए प्रतियोगी परीक्षा का आयोजन होने लगा। रोजगार प्राप्ति या रोजगार भर्ती के लिए भी प्रतियोगी परीक्षा आरंभ होने लगी। इनमें एक निश्चित पाठ्यक्रम में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए एक मात्र उद्देश्य इन प्रवेश व प्रतियोगी परीक्षाओं में सर्वोच्च अंक प्राप्त करना हो गया। समृद्ध आय वर्ग ने इन प्रवेश व प्रतियोगी परीक्षा में सफलता के लिए निजी ट्यूशन्स या कोचिंग का सहारा लिया। धीरे-धीरे इन कोचिंग संस्थानों से सफल होने वाले छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। कोचिंग संस्थानों की प्रसिद्धि तथा 1990 के पश्चात् आय वृद्धि के कारण कोचिंग का यह क्षेत्र तेजी से बढ़ने लगा। कोचिंग बाजार बढ़ने के साथ बड़े उद्यमी संगठित रूप में आधुनिक तकनीक के साथ इस क्षेत्र में स्थान बनाने लगे। धीरे-धीरे कोचिंग बाजार इतना विस्तृत हो गया कि मुख्य शिक्षा व्यवस्था गौण हो गई। देश के प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रवेश के लिए पहले कक्षा 12 के पश्चात कोचिंग की जाती थी। धीरे-धीरे यह कोचिंग कक्षा 10 से आरंभ होने लगी तथा आजकल कोचिंग संस्थान कक्षा 6 से ही कोचिंग कराने का आग्रह करने लगे हैं। देश के इन प्रतिष्ठित संस्थानों में कुल प्रवेश का 80 प्रतिशत से अधिक प्रवेश उन छात्रों का होता है जो कोचिंग प्राप्त करते हैं तथा धीरे-धीरे यह अनुपात बढ़ने लगा। कोचिंग नहीं प्राप्त करने वाले छात्र की इनमें प्रवेश की संभावना नगण्य होने लग गई।

कोचिंग बाजार का औचित्य

कोचिंग का औचित्य यह है कि इससे प्रतियोगी परीक्षा में सफलता तथा प्रतिष्ठित संस्थाओं में प्रवेश की संभावना अधिक होती है। इससे उत्पादन, आय व रोजगार की संभावना अधिक हो जाती है। से संस्थान (प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान) सरकार द्वारा अत्यधिक सब्सिडी प्राप्त होते हैं इसलिए कम लागत में विश्व स्तरीय गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध कराते हैं। देश के सीमित संसाधनों से इन संस्थानों पर होने वाले व्यय के लिए छात्रों का चयन महत्त्वपूर्ण है। अर्थात् किन छात्रों को इनमें अध्ययन का अवसर दिया जावे यह महत्त्वपूर्ण है। छात्रों के चयन का न्यायपूर्ण, वस्तुनिष्ठ व पारदर्शी तरीका यह है कि देश में उपलब्ध सर्वोत्तम गुणवत्तायुक्त बुद्धि को यह अवसर दिया जाना चाहिए। सर्वोत्तम गुणवत्तापूर्ण बुद्धि को समझने के लिए प्राकृतिक बुद्धि व प्रशिक्षित बुद्धि का अन्तर समझना महत्त्वपूर्ण

है। प्राकृतिक बुद्धि जन्मजात आनुवंशिकी द्वारा निर्धारित होती है तथा प्रशिक्षित बुद्धि शिक्षा, सामाजिकता व प्रशिक्षण से तय होती है। एक व्यक्ति की बुद्धि इन दोनों का योग होती है। संस्थानों से सर्वोत्तम परिणाम तब प्राप्त होते हैं जब उच्च प्रशिक्षित के साथ उच्च प्राकृतिक बुद्धि का चयन हो लेकिन कोचिंग संस्थानों के द्वारा उच्च प्रशिक्षित बुद्धि का चयन होता है जो उच्च प्राकृतिक बुद्धि से युक्त हो यह आवश्यक नहीं। इसलिए इससे अनुकूलतम से कम परिणाम प्राप्त होता है। सामान्यत: यह कहा जाता है कि ये प्रवेश परीक्षा खुली होती है कोई भी इनमें बैठ सकता है लेकिन यह सच नहीं है क्योंकि निम्न आय वर्ग कोचिंग के व्यय को वहन करने में समर्थ नहीं होता इससे इनके अवसर की समानता बाधित होती है। कोचिंग प्रणाली ने गरीब व उच्च आय वर्ग में भेद को बढ़ाया है तथा विद्यालयों की व्यवस्था को भी कमजोर किया है। बड़ी कोचिंग तथा बेहतर अध्ययन सामग्री अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध हैं अत: इसके कार्यकरण ने जिन छात्रों के पास अंग्रेजी माध्यम नहीं है के लिए अवसर की समानता को बाधित किया है।

कोचिंग संस्थानों का आकार तथा विस्तार

कोचिंग में पढ़ाने वाले शिक्षकों का वेतन बहुत ऊँचा होता है। इन संस्थानों में शिक्षक के रूप में आईआईटी उत्तीर्ण विद्यार्थी ही कार्य करते हैं। कई शिक्षकों का वेतन भारतीय तकनीकी संस्थान के निदेशक से ऊँचा होता है। जितने छात्र भारतीय तकनीकी संस्थानों में पढ़ते हैं उससे 10 गुणा छात्र इन कोचिंग संस्थानों में पढ़ते हैं। क्योंकि कोचिंग से प्रवेश में सफलता का भाग 10 प्रतिशत है। कोचिंग पर होने वाला व्यय भारतीय तकनीकी संस्थाओं पर होने वाले व्यय से अधिक होता है। यह सही है कि यह व्यय सरकार नहीं करती लेकिन देश के लोग करते हैं। कोचिंग पर होने वाले व्यय भारतीय तकनीकी संस्थानों पर होने वाले व्यय का 10 गुणा है (भाटिया)। कोचिंग की अकुशलता लगभग वैसी ही है जैसे किसी को 10 रु. का लाभ देने के लिए 100 रु. खर्च करना पड़े। मूल्यवर्द्धन की तुलना में चयन प्रक्रिया अधिक खर्चीली है। इसके अलावा इन संस्थानों पर होने वाला व्यय उत्पादक है लेकिन कोचिंग पर होने वाला व्यय अनुत्पादक है। कोचिंग बाजार प्रति वर्ष 15 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। बच्चे रोबोट की तरह कार्य करते हैं पाठ्यक्रम के अलावा वे कुछ नहीं देखते। कोचिंग संस्कृति व संकुचित ध्यान के कारण इन छात्रों की गुणवत्ता कमजोर हो जाती है (न्यायमूर्ति)। एसोचैम सर्वेक्षण के अनुसार मध्यम आय वर्ग अपनी आय का एक-तिहाई कोचिंग पर खर्च कर देता है। सेवा क्षेत्र में यह सबसे तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र बन गया है।

कोचिंग प्रणाली की समस्याएँ

कोचिंग के दौरान छात्र अत्यधिक मानसिक दबाव में रहते हैं। कानपुर आईआईटी के अध्ययन के अनुसार कोचिंग के दौरान मानसिक तनाव तकनीकी संस्थान में अध्ययन के दौरान मानसिक तनाव की तुलना में बहुत अधिक होता है कम आय वर्ग के बच्चों में कोचिंग के दौरान मानसिक तनाव की तुलना में बहुत अधिक होता है। यह मानसिक तनाव इतना अधिक होता है कि कई छात्र आत्महत्या तक कर लेते हैं। कोचिंग करने के उपरांत जिन छात्रों का प्रवेश परीक्षा में चयन नहीं होता वे सामाजिक कलंक का शिकार हो जाते हैं तथा जीवन भर एक अवसाद से बाहर नहीं निकल पाते। जिन छात्रों ने कोचिंग की व प्रवेश नहीं हुआ उनका कोचिंग के दौरान प्राप्त ज्ञान बाद में बेकार चला जाता है। इस प्रकार कोचिंग पर होने वाला व्यय अकुशल व अनुत्पादक होता है। कोचिंग पर होने वाले व्यय को यदि कक्षा 11 व 12 के अध्ययन पर किया जावे तो वह अधिक उत्पादक होगा। कोचिंग के दौरान छात्र की अध्ययन सामग्री व शिक्षक पर निर्भरता बढ़ जाती है। इस कारण बाद के अध्ययन में उनकी कुशलता कम हो जाती है। वे मानसिक रूप से थके हुए होते हैं व उनकी सृजनात्मकता कमजोर हो जाती है। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् अभियांत्रिकी की पढ़ाई करने वाले छात्रों का एक बहुत छोटा वर्ग ही इसी क्षेत्र में रहता है। ज्यादातर छात्र अन्य सेवाओं में चले जाते हैं व इस अध्ययन को वे मात्र एक प्लेटफार्म की तरह उपयोग करते हैं। कोचिंग में अध्ययन का एक दुष्परिणाम यह होता है कि छात्र प्रायोगिक अध्ययन से वंचित रहते हैं जो उनके विज्ञान के अधिगम स्तर को कमजोर बनाये रखता है। कोचिंग के कारण छात्र जीवन में अनुशासन, नैतिक शिक्षा व सहकार की भावना जो विद्यालय शिक्षा का महत्त्वपूर्ण घटक है से वंचित हो जाता है। विद्यालयों में अनुपस्थिति के कारण सहयोग, साहचर्य, दयालुता, सहिष्णुता तथा समन्वय जैसे गुण छात्र के जीवन में द्वितीय श्रेणी में आ जाते हैं।

भारत में श्रेष्ठ शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए होने वाली प्रवेश परीक्षा ने विद्यालयों की अपेक्षा कोचिंग को महत्त्वपूर्ण बना दिया है। कोचिंग का आकार तेजी से बढ़ा है। बाजार में प्रतियोगिता होना अच्छा है क्योंकि प्रतियोगिता से गुणवत्ता में सुधार होता है लेकिन निजी क्षेत्र का कार्यकरण भिन्न होता है। गुणवत्ता में सुधार की अपेक्षा गलत जानकारी, विज्ञापन व प्रचार द्वारा व बिना गुणवत्ता बढ़ाये लाभ बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। कोचिंग का प्रचलन सर्वोत्तम प्राकृतिक बुद्धि की अपेक्षा सर्वोत्तम प्रशिक्षित बुद्धि के चयन को अधिमान देता है। अवसरों की समानता को बाधित करता है। इस पर होने वाला व्यय अकुशल व अनुत्पादक होता है। इसका प्रभाव छात्र के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है तथा जो गुण विद्यालय शिक्षा के दौरान छात्र ग्रहण करता है तथा जो उसकी सामाजिकता को बढ़ाते हैं, कोचिंग व्यवस्था के कारण प्रतिकूल रूप में प्रभावित होते हैं। q

(सहआचार्य-अर्थशास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय, कालाडेरा)

मुझे स्मरण हो रहा है, कि सन् 1970 का दशक जब ट्यूशन जाने वाला विद्यार्थी आत्मग्लानी का अनुभव करता था, कि मैं अन्य विद्यार्थियों से कमजोर हूँ, इसी कारण से अतिरिक्त समय में ट्यूशन पर अभिभावक भेजते हैं। परिवार में भी बालक की यही स्थिति बन जाती थी कि देखो यह पढ़ने में कमजोर है। अत: इसे कोचिंग पर भेजना पड़ता है, परन्तु अब परिदृश्य बदला है, ट्यूशन पर भेजना 'स्टेटस सिम्बल' बन गया है। बच्चों को प्रात: काल स्कूल बस पर या वेन पर छोड़ने के बाद परिजन बड़े गर्व से कहते हैं, कि देखो बच्चों को खेलने का समय ही नहीं मिलता है आते ही ट्यूशन पर जाना पड़ता है, स्कूल का होमवर्क भी वही करता है, गर्व से अच्छे अच्छे कोचिंग संस्था का नाम लिया जाता है।

ट्यूशन : आधुनिक स्टेट्स सिम्बल

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

भौतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण आज का युग, प्रतिस्पर्धा का युग है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट बताने का आभासी प्रयास करता है। यही कारण है, कि वह अर्थ अर्जन के साथ-साथ सम्पूर्ण जीवन को विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करने का प्रयास कर रहा है। इस कारण समाज में एक 'विभाजक' उपस्थित होने लगा है। एक तरफ आर्थिक सम्पन्न वर्ग व दूसरी तरफ अपनी आजीविका की पूर्ति के लिए संघर्ष करता मध्यमवर्गीय समाज। सोचिये, जब दोनों वर्ग के बालक विद्यालयों या शिक्षण संस्थानों/संस्थाओं में अध्ययन करेंगे तब 'विभाजक' स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा। एक वर्ग बच्चों को आधुनिक सुविधाओं से युक्त शैक्षिक वातावरण प्रदान कर अतिरिक्त समय में कोचिंग या ट्यूशन पर भेजेगा, जबकि दूसरा वर्ग आधारभूत सुविधाओं से वंचित शिक्षण संस्थाओं में बच्चे को प्रवेश दिलाकर स्वयं को धन्य मानेगा। ट्यूशन व कोचिंग तो उसके लिए दूर की कौड़ी है।

मुझे स्मरण हो रहा है, कि सन् 1970 का दशक जब ट्यूशन जाने वाला विद्यार्थी आत्मग्लानी का अनुभव करता था, कि मैं अन्य विद्यार्थियों से कमजोर हूँ, इसी कारण से अतिरिक्त समय में ट्यूशन पर अभिभावक भेजते हैं। परिवार में भी बालक की यही स्थिति बन जाती थी कि देखो यह पढ़ने में कमजोर है। अत: इसे कोचिंग पर भेजना पड़ता है, परन्तु अब परिदृश्य बदला है, ट्यूशन पर भेजना 'स्टेटस सिम्बल' बन गया है। बच्चों को प्रात: काल स्कूल बस पर या वेन पर छोड़ने के बाद परिजन बड़े गर्व से कहते हैं, कि देखो बच्चों को खेलने का समय ही नहीं मिलता है आते ही ट्यूशन पर जाना पड़ता है, स्कूल का होमवर्क भी वही करता है, गर्व से अच्छे अच्छे कोचिंग संस्था का नाम लिया जाता है। सोचिये जिनके बच्चे सस्ते कोचिंग संस्थान में जाते हैं, या नहीं जाते, उन अभिभावकों के मन पर क्या प्रभाव पड़ता होगा? जो बच्चे ट्यूशन नहीं जाते उनके मानस पटल पर यही अंकित हो जाता है, कि हम सम्पन्न वर्ग से नहीं है। न जाने या भेज पाने की यही कसमसाहट मानसिक अवसाद का कारण बनता है। इसी कारण वर्ग विशेष के प्रति दुराव का जन्म होता है। कोचिंग संस्थानों में एक कक्षा-कक्ष में 200 से अधिक विद्यार्थियों को माइक से पढ़ाया जाता है, क्या यही शिक्षण का तरीका है? जबकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के अनुसार विद्यार्थी शिक्षक अनुपात 30:1 होना चाहिये। क्या हमारे विद्यालयों में यह आदर्श व्यवस्था है? क्या यही ट्यूशन का कारण तो नहीं? क्या हमारे

नीति निर्धारक इस बारे में सोचते हैं? प्रश्न उठना स्वाभाविक है, कि क्या बच्चों को ट्यूशन की क्या आवश्यकता है? क्या हमारी शिक्षा प्रणाली में दोष है? क्या हमें हमारी मूल्यांकन पद्धति पर विश्वास नही है?

क्या माध्यमिक शिक्षा बोर्ड या विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित मूल्यांकन पद्धति से प्राप्त अंकों का महत्त्व नहीं है ? एक परीक्षा उतीर्ण करने के पश्चात् विद्यार्थी प्री. परीक्षा (PMT), संयुक्त प्रवेश परीक्षा (JEE), अखिल भारतीय अभियांत्रिकी प्रवेश परीक्षा (AIEEE), सामान्य प्रवेश परीक्षा (CAT) आदि की तैयारी हेतु कोचिंग करता है। अत: प्रश्न उठता है, कि जब विद्यार्थी ने बोर्ड या विश्वविद्यालय के द्वारा मूल्यांकन के उपरांत अच्छे अंक प्राप्त किये हैं तो ऐसी स्थिति में उनके चयन की आधार योग्यता मेरिट (Merit) होना चाहिये। क्यों बार-बार विद्यार्थियों को अपनी श्रेष्ठता को साबित करना होता है। क्या प्रतियोगी परीक्षा के आयोजकों द्वारा भारी-भरकम शुल्क एकत्रित करना तो उद्देश्य नहीं हैं? अप्रत्यक्ष रूप से हमारी प्रतियोगी परीक्षाओं के आयोजकों की क्या मानसिकता है ? क्या कोचिंग संस्थाएँ सरकार के नीति निर्धारण में भूमिका निभाती है?

कोचिंग उद्योग को बढ़ाने से हमारे मध्यमवर्गीय परिवार के आर्थिक तंत्र को आधात पहुँचाता है। हम समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि माता-पिता ने अपने गहने बेचकर बच्चों को कोचिंग भेजा है। इसी उद्देश्य से कि कोचिंग के कारण उनके बच्चों को अधिक अंक मिलेंगे परन्तु यह अर्द्धसत्य है। कोचिंग उद्योग भारत में पूर्ण यौवन पर है, क्रिसिल शोध (Credit Rating Information Services of India Limited) के अनुसार कोचिंग उद्योग का टर्नओवर वर्ष 2010-2011 में 40,187 हजार करोड़ से वर्ष 2014-15 में 75,624 हजार करोड़ हो गया है। यह उद्योग आजकल कारपोरेट जगत को भी आकर्षित कर रहा है। एसोचैम (Associated Chamer Of Commerce, Industry Of India) की रिपोर्ट के अनुसार 70 प्रतिशत मध्यमवर्गीय भारतीय बच्चों की कोचिंग के लिए भेजते हैं। केन्द्रीय माध्यमिक बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा परिणाम घोषित होने के बाद इलेक्ट्रॉनिक मिडिया पर लगातार विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का जिक्र हो रहा है, लगता है सरस्वती की कृपा से अधिकतर विद्यार्थियों ने 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त किये हैं क्या अंक प्राप्ति, मेधा का मूल्यांकन है?

अधिक अंक अर्जित करने के लिए कोचिंग संस्थाओं के विज्ञापन भी आने लगते हैं जिससे विद्यार्थी अभी से कोचिंग प्रारंभ कर दे। आज अंकों के इस खेल में मध्यमवर्गीय परिवार जकड़ चुका है, इसी होड़ में वह कोचिंग में बच्चों को भेजकर अपने दायित्वों की पूर्ति मान लेता है।

यह उचित नहीं है, अंकों का खेल कुछ समय के लिए तो शुभकामनाएँ बटोरता है, परन्तु क्या वास्तविकता में यही मेधा का मूल्यांकन है ? शायद नहीं। यहाँ यह लिखना प्रासंगिक होगा कि श्री अवनीश कुमार, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी ने विद्यार्थियों को कम प्राप्तांकों के कारण उत्पन्न हताशा का जिक्र करते हुए कहा है कि उन्हें भी प्रारंभिक परीक्षाओं व स्नातक स्तर पर अधिकतम अंक प्राप्त नहीं हुए, उन्होंने नम्बर के खेल को अधिक गंभीरता से नहीं लेने की बात कही। श्री अवनीस कुमार व्यक्तित्व का एक उदाहरण देना समीचीन होगा कि उन्होंने अपनी बेटी को शासकीय विद्यालय में प्रवेश दिलाया। श्री शरण अपनी मेधा व परिश्रम के कारण भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी है। जब भारत के सभी अधिकारी उनके अनुकरणीय कार्य का अनुसरण करेंगे तब स्वत: ही कोचिंग संस्थाओं के अनियमित विस्तार पर अंकुश लगेगा। यहाँ एक रोचक तथ्य लिखना भी प्रासंगिक होगा यद्यपि यह एक व्यंग्य है परन्तु समाज व शिक्षा नीति पर प्रहार है। एक ट्यूशन केन्द्र पर लिखा है 'पर्यावरण विज्ञान की अवधारणाएँ हेतु' संस्थान में प्रवेश प्रारंभ है, व दूसरे ट्यूशन केन्द्र पर लिखा था, पर्यावरण विज्ञान में 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने हेतु प्रवेश लें, पहला ट्यूशन केन्द्र खाली था जबकि दूसरे ट्यूशन केन्द्र पर भीड़ लगी थी। क्या यही परिदृश्य आज की शिक्षा व्यवस्था व समाज का सही मूल्यांकन है ? आज देश में कोचिंग संस्थानों में प्रात: काल से शाम तक विद्यार्थियों की भीड़ रहती है यही विद्यार्थी उसी शहर में स्थित विद्यालय में सिर्फ वह प्रवेश लेता है, जहाँ कक्षा-कक्ष खाली रहते हैं। इसके लिए कौन जिम्मेदार है? क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था? क्या अभिभावक? क्या कोचिंग उद्योग का तंत्र एक तरफ विद्यार्थी की नियमित उपस्थिति आवश्यक है? क्या उसकी उपस्थिति प्रोक्सी होती है ? यह विचारणीय व चिंता का विषय है हमारे शैक्षिक तंत्र के अधिकारियों को इस पर चिंतन करना होगा। एक अनुमान के अनुसार एक राज्य में करीब दो दर्जन से अधिक महत्त्वपूर्ण कोचिंग संस्थान हैं। जिसमें 2 लाख से अधिक विद्यार्थी कोचिंग लेते हैं। अभिभावक कोचिंग हेतु भारी भरकम फीस देते हैं, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यह बताते हैं कि अतिरिक्त अर्थ की व्यवस्था करने से अभिभावकों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है वे अवसाद (depression), चिंता (anxiety) तनाव (Stress) के कारण परेशान होते हैं, उससे उनके कार्य निष्पादन पर प्रभाव पड़ता है, इस कारण भारत के सकल घरेलू उत्पादन पर असर पड़ता है, यह देश के लिए चिंता कारक है। अतिरिक्त व्यय का आर्थिक तंत्र पर विपरीत प्रभाव होता है, माता-पिता बच्चों को कोचिंग नही भेज सकते उनके मानस पटल पर हीन भावना अपनी जड़ें जमा लेती है। अत: विद्यालयों में विद्यार्थियों की अभिरुचि के अनुसार उन्हें अधिगम की आधुनिकतम सुविधाएँ उपलब्ध कराना चाहिये, इस तकनीकी युग की चुनौतियों का सामना करते हुए, शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम के अतिरिक्त प्रयोगात्मक व सैद्धान्तिक पक्ष को सुदृढ़ आधार प्रदान किया जाना चाहिये आधुनिक प्रोद्यौगिकी का उपयोग कर उसकी जिज्ञासा समाधान व प्रतियोगी परीक्षाओं की जानकारी व तैयारी विद्यालय स्तर पर ही होना चाहिये तभी कोचिंग व ट्यूशन पर अंकुश लगेगा। q

(प्रोफेसर पर्यावरण विज्ञान विभाग, संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

आज अत्यधिक आवश्यकता है ऐसे व्यक्तियों की जो विभिन्न क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित कर सकें। जिनके बीच सौहार्द और सकारात्मक प्रतिस्पर्धा हो, ईर्ष्या नहीं। सफल लोगों में पढ़ाई में टॉपर कम ही मिलते हैं। जीवन की हकीकत अंकों व नौकरी की प्रतिस्पर्धा के खेल से बिल्कुल भिन्न है अतः हमें अपने बालकों को जीवन कौशल सीखाना है। इसके लिए संस्थानों के मूल्यांकन और उनकी ग्रेडिंग का आधार भी विद्यार्थियों का परिणाम और केवल अंकों को मानना भी सही नहीं है। संस्थान किस प्रकार के नागरिक निर्माण का कार्य कर रहा है, इसे मुख्य आधार बनाया जाए। विद्यार्थी को क्या सोचना और करना है इसके बजाय शिक्षा उन्हें कैसे सोचना और करना है पर बल देने वाली होनी चाहिए और इसके लिए ही सभी का सरकार, समाज, अभिभावकों का समेकित प्रयास होना चाहिए।

शिक्षा में प्रतिस्पर्धा बढ़ाते कोचिंग संस्थान

❑ **डॉ. सुमनबाला**

शिक्षा बोर्ड के दसवीं और बारहवीं के नतीजे इस माह घोषित हो चुके हैं और प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी परिणामों की घोषणा के साथ ही विभिन्न कोचिंग संस्थानों द्वारा अच्छे परिणाम देने के प्रदर्शन की होड़ आरम्भ हो गई है। बोर्ड के परिणामों की घोषणा के साथ ही कोचिंग सेन्टर द्वारा इन परीक्षाओं में टॉपर रहे व अधिक अंक प्रतिशत प्राप्त करने वाले बच्चों के चित्र उन बालकों द्वारा अर्जित अंकों के साथ प्रत्येक अख़बार में निरन्तर दिए जा रहे हैं। साथ-साथ उस कस्बे अथवा शहर के विभिन्न स्थानों पर लगे होर्डिंग और पोस्टर कोचिंग संस्थानों और टॉपर रहे बच्चों के सफलता के कीर्तिमान को बताते और दर्शाते नजर आ रहे हैं। इन कोचिंग संस्थानों में एक होड़ मच जाती है कि किस प्रकार बोर्ड कक्षाओं और प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल होने वाले और अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को अपने संस्थान से कोचिंग लेता हुआ बताया और दर्शाया जाए। विद्यार्थी और उनके अभिभावक कोचिंग संस्थानों द्वारा बनाई गई अंकों के प्रतिशत और प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता के लिए बनाई गई इस भूल-भुलैया से अछूते नहीं रह पाते हैं। किसी भी विद्यार्थी का परीक्षा परिणाम कई कारकों पर निर्भर करता है जिसमें बालक की स्वयं की मेहनत, उसके विद्यालय अध्यापकों के प्रयास, उसके अभिभावकों की अभिप्रेरणा और उसके परिवेश से अन्यान्य जुड़े कारण और परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं, परन्तु विद्यार्थी, अभिभावक और समाज सभी कोचिंग संस्थानों द्वारा उत्पन्न की गई अंकार्जन की दौड़ को ही शिक्षा का उद्देश्य मानकर उसे महत्त्व देने लग गए हैं, जिसके परिणामस्वरूप दिनों दिन इन कोचिंग संस्थानों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

एसोचैम की एक स्टडी रिपोर्ट के अनुसार जो 'भारत में प्राइवेट कोचिंग संस्थानों के व्यापार' शीर्षक से की गई थी में चौंकाने वाले आँकड़े सामने आए हैं। इसके अनुसार 35 प्रतिशत और इससे भी अधिक विद्यार्थी इस कोचिंग उद्योग पर निर्भर हैं। भारतीय कोचिंग उद्योग स्टॉक मार्केट की तरह कई बिलियन डॉलर (40 बिलियन डॉलर से भी अधिक) तक पहुँच गया है। पिछले पाँच वर्षों में इसमें 35 प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि हुई है जो प्रतिवर्ष बढ़ रही है। बड़े शहरों में लगभग 87 प्रतिशत प्राथमिक स्तर के और 95 प्रतिशत माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी किसी न किसी तरह की कोचिंग ले रहे हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार एक चौंकाने वाला तथ्य यह भी सामने आया है कि

विद्यालयों में पढ़ाने वाले अच्छे अध्यापक अपनी नौकरी छोड़कर इन कोचिंग संस्थानों में पढ़ाने के लिए जा रहे हैं क्योंकि यहाँ उन्हें वर्ष भर की आय के बराबर एक महीने में पैसा दिया जा रहा है, इसलिए ये अध्यापक या तो किसी नामी कोचिंग संस्थान से जुड़ जाते हैं या स्वयं की कोचिंग देना आरम्भ कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में विद्यालयों को पढ़ाने के लिए अनुभवी शिक्षक मिलना कठिन होता जा रहा है और कोचिंग का महत्त्व और अधिक बढ़ाने का कारण बनता जा रहा है। ऐसोचैम की रिपोर्ट के अनुसार अधिकतर मध्यमवर्गीय माता-पिता अपनी महीने की कमाई का लगभग एक तिहाई हिस्सा बालक की कोचिंग पर खर्च कर रहे हैं, जिससे कि वह परीक्षा में अच्छे अंक ला सके और प्रतियोगी परीक्षा में सफल हो सके। रिपोर्ट के अनुसार बालक पूरे-पूरे दिन घर से बाहर रहता है और घर में उसकी अभिभावकों से अन्तःक्रिया (interaction) न के बराबर है ऐसे में जो संवाद परिवार में हो रहा है केवल बहु दैनंदिन आवश्यकताओं (खाना, पीना, दैनिक क्रियाकलापों) से संबंधित है।

राजस्थान का कोटा शहर आज कोचिंग सिटी के रूप में जाना जाता है जो कभी औद्योगिक शहर के रूप में अपनी पहचान रखता था। कोटा के कोचिंग उद्योग का टर्नओवर 1500 करोड़ रुपये से भी अधिक है और मेडिकल और तकनीकी शिक्षा की प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों की पहली पसंद यहाँ से कोचिंग प्राप्त करना रहती है। इस प्रकार जहाँ हमारी शिक्षा प्रणाली निरन्तर प्रतियोगिता आधारित और परीक्षा उन्मुख होती जा रही है वहीं कोचिंग का व्यापार बिना किसी भय के फल-फूल रहा है। गली-गली में निरन्तर इन कोचिंग संस्थानों की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। ऐसा नहीं है कि ये कोचिंग उद्योग केवल पैसा ही कमा रहे हैं बल्कि इससे भी घातक ये बालकों में डिप्रेशन और स्ट्रेस (तनाव) को बढ़ा रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप बालक आत्महत्या करने जैसा घातक कदम भी उठा लेते हैं। अभी हाल ही में कोटा में आत्महत्या करने वाली एक छात्रा ने अपने सुसाईड नोट में लिखा था कि 'मैं भारत सरकार और मानव संसाधन विकास मन्त्रालय से कहना चाहती हूँ कि अगर वो चाहते हैं कि कोई बच्चा न मरे तो जितनी जल्दी हो सके इन कोचिंग संस्थानों को बंद करवा दें।' इसी छात्रा ने अपनी माँ के लिए भी लिखा कि 'आपने मेरे बचपन और बच्चा होने का फायदा उठाया और मुझे विज्ञान पसंद करने के लिए मजबूर करती रहीं। मैं भी विज्ञान पढ़ती रही ताकि आपको खुश रख सकूँ। मैं क्वांटम फिजिक्स और एस्ट्रोफिजिक्स जैसे विषयों को पसंद करने लगी। मैं आपको बता दूँ कि मुझे आज भी अंग्रेजी साहित्य और इतिहास बहुत अच्छा लगता है क्योंकि ये मुझे मेरे अंधकार के वक्त में मुझे बाहर निकालते हैं।' उपर्युक्त उदाहरण शिक्षा के बारे में हमारी सोच को झकझोरने के लिए मजबूर करती है कि शिक्षा का अर्थ क्या सही मायनों में हम समझ सकेंगे या इसी तरह भेड़ चाल का हिस्सा बनकर अंकों के खेल में उलझकर रह जायेंगे। शिक्षा को काबिल बनाने के लिए महत्त्व देंगे या दाखिले के लिए बनायी गई रस्साकशी के लिए अंकों की दौड़ में अपने बालकों को धकेल देंगे।

आज अत्यधिक आवश्यकता है ऐसे व्यक्तियों की जो विभिन्न क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित कर सकें। जिनके बीच सौहार्द और सकारात्मक प्रतिस्पर्धा हो, ईर्ष्या नहीं। सफल लोगों में पढ़ाई में टॉपर कम ही मिलते हैं। जीवन की हकीकत अंकों व नौकरी की प्रतिस्पर्धा के खेल से बिल्कुल भिन्न है अतः हमें अपने बालकों को जीवन कौशल सीखाना है। इसके लिए संस्थानों के मूल्यांकन और उनकी ग्रेडिंग का आधार भी विद्यार्थियों का परिणाम और केवल अंकों को मानना भी सही नहीं है। संस्थान किस प्रकार के नागरिक निर्माण का कार्य कर रहा है, इसे मुख्य आधार बनाया जाए। विद्यार्थी को क्या सोचना और करना है इसके बजाय शिक्षा उन्हें कैसे सोचना और करना है पर बल देने वाली होनी चाहिए और इसके लिए ही सभी का सरकार, समाज, अभिभावकों का समेकित प्रयास होना चाहिए। ये सब प्रयास ही हमारी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन कर शिक्षा में बढ़ती प्रतिस्पर्धा को खत्म कर सकेंगे और साथ ही प्रतिस्पर्धा को निरन्तर बढ़ाने वाले इन कोचिंग सेण्टर के वर्चस्व और अंतहीन दौड़ को भी समाप्त कर सकेंगे। q

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय, हटूण्डी, अजमेर)

कोचिंग के भरोसे भारतीय शिक्षा

कोचिंग सेंटर में आपको यह महसूस कराया जाता है कि कोचिंग में सीखे गए जवाब से आपको अच्छे नंबर मिलेंगे। रटे रटाए उत्तर सिखा कर विद्यार्थियों को होशियार हो जाने का भरोसा दिलाया जाता है। लेकिन यह रचनात्मकता और अलग सोचने की शक्ति को खत्म कर देता है। इन बड़े कोचिंग सेंटरों ने शिक्षा का सत्यानाश कर दिया है। वेदों में कहा गया है शिक्षा वह है जो मुक्त करती है, भय से मुक्त करती है, अंधकार से मुक्त करती है, अज्ञानता से मुक्त करती है और विद्यार्थी को सारी बुराइयों से मुक्त करती है। सही बात तो यह है कि बेहतर छात्र की परिभाषा बेहतर नंबरों से हो, यह सही नहीं है। ना ही बेहतर नंबर लाने के लिए परीक्षा की मौजूदा प्रणाली अच्छी शिक्षा को बढ़ावा देती है यानी जरूरत सफलता का फार्मूला बेचने के व्यापार को बढ़ाने की नहीं बल्कि शिक्षा के दायरे और समझ को विकसित करने की है।

❑ **श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी**

स्कूली शिक्षा से लेकर डॉक्टर और इंजीनियर बनने तक की परीक्षा तक हर क्षेत्र में भारत में कोचिंग और ट्यूशन का दबदबा है, भारत में यह धारणा बन चुकी है कि छोटी-मोटी नौकरी से लेकर आईएएस बनने तक का सपना बिना कोचिंग के पूरा नहीं किया जा सकता। यानी जिन बच्चों पर भारत के भविष्य के निर्माण का जिम्मा है, वह कोचिंग और ट्यूशन के बोझ से दबे हुए हैं। एक अंतरराष्ट्रीय रिसर्च से यह पता चलता है कि भारत के बच्चे कोचिंग जाने के मामले में दुनिया में सबसे आगे हैं। आपने तरह-तरह के उद्योगों के बारे में सुना होगा लेकिन हमारे देश में कोचिंग भी एक उद्योग बन गया है और यह उद्योग जबरदस्त मुनाफे में चल रहा है।

ताजा सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 70 प्रतिशत पालक अपने बच्चों को कोचिंग दिलाना चाहते हैं। उन्हें विश्वास है कि कोचिंग क्लासेज उनके बच्चों को प्रतियोगी स्पर्धाओं की तैयारी में मदद करता है, पालकों का यह विश्वास कोचिंग उद्योगों को मोटी रकम देने में मदद करता है, पालकों के बीच इस तरह के आधार, विश्वास और खर्च करने की क्षमता के कारण कोचिंग संस्थान एक 'व्यवसाय' बन गये हैं, और कोचिंग उद्योग तेजी से फल-फूल रहा है।

आईआईटी, जेईई में सिर्फ 5500 जगह होती है, लेकिन हर साल 3 लाख से भी ज्यादा छात्र परीक्षा देते हैं। इंजीनियरिंग एग्जामिनेशन, मेडिकल टेस्ट सभी जगह हजारों की जगह के लिए लाखों बच्चे परीक्षा देते हैं, उपलब्ध जगह के लिए परीक्षा दे रहे छात्रों की कुल संख्या का यह बेहद दुखद अनुपात है। उनमें से लगभग हर विद्यार्थी इन जगहों पर अपनी पकड़ बनाने के लिए कोचिंग संस्थान का दरवाजा खटखटाता है, क्योंकि उसके दिमाग में यह धारणा बैठ चुकी है कि कोचिंग ही उसे सफलता के दरवाजे तक पहुँचाने वाली एकमात्र चाबी है।

कोचिंग संस्थानों को व्यवसाय का रूप देने में, सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई की बदहाली भी जिम्मेदार रही है। सरकारी स्कूलों और कॉलेजों के टीचर मोटा वेतन पाने के बावजूद पढ़ाई को लेकर लापरवाह बने रहते हैं। अभिभावकों की मानें तो, अगर सरकारी स्कूल और कॉलेजों

में अच्छी पढ़ाई होती तो इतने कोचिंग इंस्टीट्यूट कभी नहीं पनपते। सरकारी स्कूलों और कॉलेजों के टीचर ही प्राइवेट कोचिंग सेंटरों में जाकर पूरी तल्लीनता से पढ़ाते हैं। ज्यादातर सरकारी टीचर तो अपने घर पर ही कोचिंग सेंटर चलाते हैं, और मोटी कमाई करते हैं। प्राइवेट कोचिंग संस्थानों में जाकर वे जितना मन लगा कर बच्चों को पढ़ाते हैं उसका यदि 50 प्रतिशत भी सरकारी स्कूल और कॉलेजों के बच्चों को पढ़ाते तो उन्हें अलग से कोचिंग की जरूरत ही नहीं पड़ती। सरकार हर साल स्कूल और कॉलेजों में गुणवत्ता शिक्षा के नाम पर करोड़ों रुपए खर्च करती है, फिर भी सरकारी स्कूलों और कॉलेजों की बदहाली बढ़ती जा रही है और इसी वजह से कोचिंग का प्राइवेट बाजार फलता फूलता जा रहा है।

राजस्थान का कोटा शहर मेडिकल और इंजीनियरिंग की कोचिंग के लिए एक बड़ा गढ़ है। एक अनुमान के मुताबिक कोटा 'कोचिंग सुपर मार्केट' का सालाना टर्नओवर अट्ठारह सौ करोड़ रुपए का है। कोचिंग सेंटर सरकार को अनुमानत सालाना 100 करोड़ रुपए से अधिक टैक्स के तौर पर देते हैं। यहाँ पर नामी-गिरामी संस्थानों से लेकर छोटे-मोटे 200 कोचिंग संस्थान चल रहे हैं, जो प्रवेश के लिए प्रशिक्षण देते हैं। आज की तारीख में कोटा में लगभग डेढ़ से दो लाख छात्र इन संस्थानों में कोचिंग ले रहे हैं। लेकिन पिछले कई वर्षों से यह शहर कोचिंग कर रहे छात्र-छात्राओं की आत्म हत्याओं के कारण सुर्खियों में रहा है। शत-प्रतिशत परिणाम लाने की लालसा और अपने संस्थान में विद्यार्थियों की संख्या, प्रतिशत बढ़ाने की होड़ में यह कोचिंग संस्थान अपने यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थियों पर अच्छा परिणाम लाने का दबाव डालते हैं, ऐसे मानसिक दवाब में कोटा में आत्महत्या करने वाले छात्र-छात्राओं की

संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। कोटा में आत्महत्या करने वाली छात्रा कीर्ति त्रिपाठी ने अपने सुसाइड नोट में लिखा कि 'मैं भारत सरकार और मानव संसाधन मंत्रालय से कहना चाहती हूँ कि अगर वो चाहते हैं कि कोई भी बच्चा ना मरे, तो जितना, जल्द हो सके इन कोचिंग संस्थानों को बंद करवा दें। यह कोचिंग, संस्थान छात्रों को खोखला कर देते हैं। पढ़ने का बच्चों पर इतना दबाव होता है कि वे डिप्रेशन और स्ट्रेस में आ जाते हैं।' आत्महत्या करने वाली छात्रा का यह कथन कोचिंग संस्थानों की वीभत्सता को जाहिर करता है।

इन कोचिंग सेंटरों की बढ़ती तादाद का एक मुख्य कारण मध्यमवर्ग की बढ़ती आमदनी भी है, मध्यमवर्ग नौकरी पाने के लिए बेहतर और छोटा रास्ता तकनीकी शिक्षा, को मानता है, यही वजह है कि दाखिले की परीक्षा के लिए कोचिंग की माँग भी बढ़ गई है। उच्च वर्ग में देखें तो कोचिंग लेना एक फैशन बन गया है बड़े-बड़े स्कूलों के बच्चों के लिए यह फैशन जैसा है। वे घर पर कोचिंग लेना पसंद करते हैं। स्कूली शिक्षा के साथ-साथ कोचिंग लेने का चलन पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ा है। विद्यार्थियों में प्रचलित यह भ्रामक विचारधारा है कि व्यवस्थित पढ़ाई कोचिंग लेने पर ही होती है। इस बात ने भी कोचिंग सेंटरों की तादाद को बढ़ाया है।

कोचिंग सेंटर में आपको यह महसूस कराया जाता है कि कोचिंग में सीखे गए जवाब से आपको अच्छे नंबर मिलेंगे। रटे रटाए उत्तर सिखा कर विद्यार्थियों को होशियार हो जाने का भरोसा दिलाया जाता है। लेकिन यह रचनात्मकता और अलग सोचने की शक्ति को खत्म कर देता है। इन बड़े कोचिंग सेंटरों ने शिक्षा का सत्यानाश कर दिया है।

वेदों में कहा गया है शिक्षा वह है जो मुक्त करती है, भय से मुक्त करती है, अंधकार से मुक्त करती है, अज्ञानता से मुक्त करती है और विद्यार्थी को सारी बुराइयों से मुक्त करती है। सही बात तो यह है कि बेहतर छात्र की परिभाषा बेहतर नंबरों से हो, यह सही नहीं है। ना ही बेहतर नंबर लाने के लिए परीक्षा की मौजूदा प्रणाली अच्छी शिक्षा को बढ़ावा देती है यानी जरूरत सफलता का फार्मूला बेचने के व्यापार को बढ़ाने की नहीं बल्कि शिक्षा के दायरे और समझ को विकसित करने की है। ❑

(सहायक आचार्य -राजनीति विज्ञान, राजकीय बांगड स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पाली)

माता-पिता दोराहे पर, बालक चौराहे पर

❑ श्रीमती भारती दशोरा

विद्यालयों में दी जाने वाली कक्षा आधारित शिक्षा एवं ट्यूशन का कोई तुलनात्मक आकलन सम्भव नहीं हैं। ट्यूशन शिक्षा के नाम पर वह बैसाखी है जिसके सहारे चलते चलते बच्चे न ठीक से दौड़ पाते हैं और न ही ठीक से चल पाते हैं। विद्यालय स्वयं में कोई व्यक्ति नहीं होता है वह एक समूह होता है वहाँ उर्वरा मिट्टी एवं ऊर्जादायी जड़ों के रूप में शिक्षक होते हैं। ऐसी मिट्टी व जड़ें किसी कमरे कॉम्प्लेक्स या दुकान की नहीं हो सकती। शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रख कर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनाने की प्रक्रिया पर जोर दिया जाएँ।

किसी भी देश की शिक्षा का स्वरूप उसके काल, परिस्थिति एवं परिवेश के सापेक्ष होता है। यह सब परिवर्तनशील है इसलिए शिक्षा का स्वरूप भी बदलता रहता है। आधुनिक युग में शिक्षा बाल केन्द्रित है बालक को शिक्षा प्रदान करते समय उसकी रुचि एवं बुद्धि का पूर्णतया ध्यान रखा जाता है। बुद्धि के आधार पर ही बालक अपने समक्ष उपस्थित परिस्थिति के अनुरूप अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है और अपने ज्ञान का निर्माण एवं विस्तार करता है। शिक्षा की बदली हुई अवधारणा के अनुसार सीखना ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया है। ज्ञान का वास्तविक अर्थ सूचना और तथ्यों के आधार पर विभिन्न अवधारणाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित कर अपना एक ढाँचा खड़ा करना है। नई अवधारणा यह भी मानती है कि ज्ञान प्राप्त या प्रदान नहीं किया जा सकता है। ज्ञान के साथ बोध बहुत गहराई से जुड़ा है। वह अवधारणाओं के बीच सम्बन्धों की एक ऐसी संरचना है, जिसे हम अपने अनुभवों के आधार पर मस्तिष्क में बनाते हैं तथा जाँच करने में सक्षम होते हैं।

विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ बच्चों को इस तरह का वातावरण उपलब्ध करवाया जाता है कि वे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं कर सके। विद्यालय एवं विशेष तौर पर शिक्षक की यह जिम्मेदारी है कि वह बालक के समक्ष नई-नई चुनौतियाँ प्रस्तुत करें तथा समाधान में सहयोग करें। लेकिन जिस तरह से आज ट्यूशन और कोचिंग पढ़ाई का मुख्य हिस्सा बनता जा रहा है बच्चे विद्यालय में रह कर ज्ञान सृजन के बजाय कोचिंग में अधिक समय दे रहे हैं। ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि क्या ये ट्यूशन एवं कोचिंग बालक के रचनात्मक विकास को कर पाने में सक्षम हो रहे हैं? क्या ट्यूशन या कोचिंग आज के दौर की अनिवार्य आवश्यकता बन गये हैं ? ऐसे कई सवाल आज शिक्षक होने के नाते हमारे मन उठते हैं। यदि हम ट्यूशन या कोचिंग के इतिहास पर दृष्टि डाले तो यह तथ्य सामने आता है कि इसकी आवश्यकता सीखने में पीछे रह जाने वाले बालकों के लिये महसूस की गई थी जहाँ कठिन विषयों को सीखने में बालक की अतिरिक्त सहायता की जाती थी लेकिन अभी ऐसा नहीं है विद्यालय की पढ़ाई शुरू हो या नहीं ट्यूशन साल भर चलती रहती है। शिक्षा के स्तर को गिराने के एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में ट्यूशन आज फैशन बन चुकी है। आज के दौर में आप जिधर भी नजर डाले अपने अनजाने भविष्य की तलाश में बच्चे भागते हुए दिखाई दे रहे हैं, जो बच्चे कम और प्रतिस्पर्धा की दौड़ के

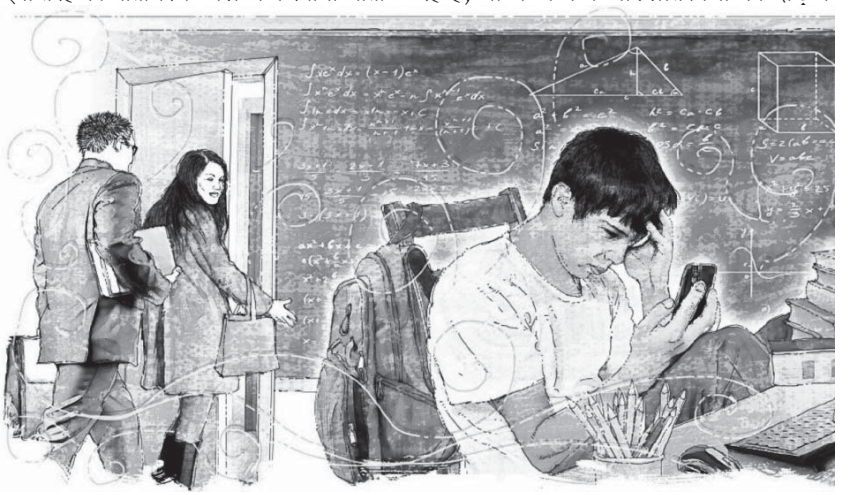

रोबोट ज्यादा लगते हैं। इनकी अपनी कोई सोच रुचि नहीं है वह केवल इस पढ़ाई के लिये प्रोग्राम किये हुए हैं। इस सब की होड़ में कहीं कुछ पीछे छूट रहा है तो वह है हमारे संस्कार, हमारे सामाजिक मूल्य। बच्चे के नियत टाइम टेबल में अपने बुजुर्गों एवं माता-पिता के लिए समय है ही नहीं। अपने चारों ओर की दुनिया को जब बारीकी से देखते हैं तो पता चलता है कि ये सारी भागम-भाग सामान्य से विशिष्ट बनने की है और इसी ने माता-पिता को दो राहे पर एवं बालक को चौराहे पर खड़ा कर दिया है।

कॅरियर की अंधी दौड़ में पिछड़ जाने के जाने के भय एवं शिक्षा के बाजारीकरण के कारण मध्यमवर्गीय परिवार अपने बच्चों को इस चमकीली दुनिया में प्रवेश करा देते हैं। वहाँ जा कर बालक भी अपनी स्वयं की पहचान खोकर भेड़ चाल में शामिल हो जाता है। यह बात बहुत अच्छी तरह जानने एवं समझने के बावजूद कि शिखर पर तो कम ही लोग पहुँच पाते हैं, वह अतिरिक्त दबाव के साथ मेहनत करता है। उसकी अपनी रुचियाँ एवं इच्छाएँ इस दबाव के नीचे सिसक कर दम तोड़ देती हैं और अन्त में जब असफलता हाथ लगती है तो बालक अवसादग्रस्त हो जाता है। अपने भविष्य को बनाने के नाम पर वह ऐसे चक्रव्यूह में दाखिल हो जाता है जहाँ से बाहर निकलने का कोई रास्ता उसे दिखाई नहीं देता।

विद्यालयों में दी जाने वाली कक्षा आधारित शिक्षा एवं ट्यूशन का कोई तुलनात्मक आकलन सम्भव नहीं हैं। ट्यूशन शिक्षा के नाम पर वह बैसाखी है जिसके सहारे चलते चलते बच्चे न ठीक से दौड़ पाते हैं और न ही ठीक से चल पाते हैं। विद्यालय स्वयं में कोई व्यक्ति नहीं होता है वह एक समूह होता है वहाँ उर्वरा मिट्टी एवं ऊर्जादायी जड़ों के रूप में शिक्षक होते हैं। ऐसी मिट्टी व जड़ें किसी कमरे कॉम्प्लेक्स या दुकान की नहीं हो सकती। शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रख कर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व बनाने की प्रक्रिया पर जोर दिया जाएँ।

विद्यालय का वातावरण एवं शिक्षकों के मनोविज्ञान का ज्ञान दोनों मिलकर बालक के लिए शिक्षण एवं अधिगम वातावरण तैयार करते हैं। विद्यालयों में शिक्षण के अतिरिक्त खेलकूद, पाठ्य सामग्री, प्रवृत्तियाँ, उत्सव, जयन्तियाँ आदि कई क्रियाकलाप बालक को बोझिल नहीं होने देते हैं वहाँ उसके बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक, चारित्रिक विकास पर बल दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि बालक के विकास में स्वतन्त्र वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है जो कि ट्यूशन शिक्षकों द्वारा उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है।

कोचिंग संस्थानों में ट्यूशन देने का कार्य एक प्रशिक्षित शिक्षक करे, यह अनिवार्य नहीं हैं। अगर वर्तमान में हम चारों ओर दृष्टि डालते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि अधिकतम ट्यूशन देने वाले शिक्षक अप्रशिक्षित हैं, जिन्हें न तो शिक्षण के तरीके पता हैं और न ही वे बालक के मानसिक स्तर को ध्यान में रख कर ही शिक्षण करते हैं इनका शिक्षण केवल स्मृति पर आधारित होता है, जिसमें बोध के लिये कोई स्थान नहीं हैं। उन्हें यह ज्ञान भी नहीं होता है कि बालकों को किस प्रकार से अतिरिक्त शैक्षिक सहायता प्रदान की जाए जो उसके सर्वांगीण विकास में सहायक हो सकें। अप्रशिक्षित शिक्षक ज्यादा से ज्यादा रटने की प्रवृत्ति को बढावा देते हैं। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार ट्यूशन विद्यार्थियों पर पढ़ाई का बोझ बढ़ाता है और ट्यूशन के ये केन्द्र ऐसे समाज की कल्पना को साकार करते हैं जिसके लिये शिक्षा का अर्थ सिर्फ नम्बरों की दौड़ हैं।

अत: अन्त में यही कहना चाहूँगी कि यदि हम भारतीय शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक सुधार करना चाहते हैं तो हमें ट्यूशन देने के प्रचलन को समाप्त कर देना होगा एवं बालकों को स्वतन्त्र चिन्तन के अवसर सुलभ कराने होंगे। इसके लिए अभिभावकों को भी जागरूक बनाना होगा कि उनके बच्चे इन्सान हैं। सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षित होने का लक्ष्य नौकरी प्राप्त करने की सम्भावनाओं से जुड़ा हुआ है पर कीमत आपके बच्चों को अपना बचपन गंवा कर चुकानी होगी। ❑

(प्राध्यापक-भूगोल, निम्बार्क शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर)

बदलते स्वरूप में शिक्षण संस्थाएँ

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

अभिभावकों को अपने बच्चों के भविष्य की चिंता रहती है और यह स्वाभाविक भी है। इस कारण इन दिनों 3 से 4 वर्ष के बालक को पढ़ने भेजने की मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है। बालक को प्रतिभावान बनाने के लिए वे अंग्रेजी माध्यम निजी विद्यालय में नर्सरी, के.जी. में प्रवेश दिलाकर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। यह बालक मजदूर, किसान, छोटा व्यवसायी, निजी संस्थानों में नौकरी करने वाला भी अधिक शुल्क देकर पढ़ाना चाहता है। इसका कारण यह भी है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में विशुद्ध शैक्षिक उद्देश्य उपेक्षित हो रहा है। शिक्षा संस्थानों का रूपान्तरण भव्य भवनों से युक्त संस्थानों में होने लगा है। परीक्षा ही सम्पूर्ण शिक्षा की केन्द्र बिन्दु बन गई है।

देश में अप्रैल से जून तक किसी भी शहर/कस्बे में जाएँ तो बड़े-बड़े होर्डिंग, पोस्टर, बेनर एवं बिजली के खंभे या सूनी दीवार पर लटकते हुए रंग बिरंगी कलात्मक पट्टिकाएँ, पम्पलेट्स दिखाई देंगे। ये किसी राजनेता के नहीं अपितु निजी, आवासीय विद्यालय, कोचिंग संस्था, एकेडमी नाम से होंगे, पृष्ठ या आंशिक स्थान में कुछ विद्यार्थियों के आवक्ष चित्र इस सत्र में प्राप्तांक एवं मेरिट सहित देखे जा सकते हैं। इन पर प्रबंधक, डायरेक्टर, शिक्षक के चित्र एवं सम्पर्क दूरभाष नम्बर भी अंकित होते हैं। 'शीघ्र प्रवेश हेतु सम्पर्क करें', लिखा होता है। कुछ संस्थाएँ अपने विशाल भवन, सुविधाओं को भी वर्णित कर देती है। ऐसा भी देखा गया है कि संस्थाएँ दूर-दूर तक शहरों में अपने पोस्टर लगाती हैं तथा पेन्टर द्वारा सूनी, खाली दीवारों पर भी विज्ञापन लिखा देती हैं। कुछ संस्थाएँ टी.वी. पर विज्ञापन देती हैं तो कुछ पूरा या आधा पृष्ठ समाचार पत्रों में विद्यार्थियों की उपलब्धता दिखाते हुए विज्ञापन छपवाती हैं। इन विज्ञापनों को देखकर अभिभावक और विद्यार्थी आकर्षित हों इसके लिये राजकीय विद्यालय तक लाने ले जाने हेतु वाहन पर लगाये जाते हैं।

अभिभावकों को अपने बच्चों के भविष्य की चिंता रहती है और यह स्वाभाविक भी है। इस कारण इन दिनों 3 से 4 वर्ष के बालक को पढ़ने भेजने की मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है। बालक को प्रतिभावान बनाने के लिए वे अंग्रेजी माध्यम निजी विद्यालय में नर्सरी, के.जी. में प्रवेश दिलाकर समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। यह बालक मजदूर, किसान, छोटा व्यवसायी, निजी संस्थानों में नौकरी करने वाला भी अधिक शुल्क देकर पढ़ाना चाहता है। इसका कारण यह भी है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में विशुद्ध शैक्षिक उद्देश्य उपेक्षित हो रहा है। शिक्षा संस्थानों का रूपान्तरण भव्य भवनों से युक्त संस्थानों में होने लगा है। परीक्षा ही सम्पूर्ण शिक्षा की केन्द्र बिन्दु बन गई है। सृजनशीलता और रचनात्मक क्षमता लुप्त होने लगी है। जो विद्यार्थी अधिक से अधिक अंक प्राप्त करे, वह श्रेष्ठ विद्यार्थी कहलाता है। इन दिनों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने में नहीं बल्कि अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने की होड़ में अपनी शक्ति लगाता है। इसके लिए वह अपनी पारिवारिक आर्थिक स्थिति एवं सुविधा के अनुसार शिक्षण संस्थान का चयन करता है।

सरकारी विद्यालय-राज्य सरकारों द्वारा प्राथमिक से महाविद्यालय तक की शिक्षा व्यवस्था राजकीय विद्यालय में की जाती है। कुछ राज्य दिल्ली, गुजरात, गोवा, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि हैं जहाँ सरकारी विद्यालयों की संख्या कम है, किसी राज्य में माध्यमिक शिक्षा तक राजकीय व्यवस्था ही है, वहाँ निजी विद्यालय ही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। लगभग सभी प्रान्तों में सरकारी विद्यालयों के प्रति अभिभावकों, विद्यार्थियों में नकारात्मक भाव है। यह कहा जाने लगा है कि सरकारी विद्यालय में आर्थिक एवं सामाजिक रूप से कमजोर वर्ग के विद्यार्थी को ही पाठ्यपुस्तक, छात्रवृत्ति, मिड-डे मिल, लेपटॉप, साईकिल, स्कूटी जैसी सुविधाएँ दी जा रही हैं। इस कारण एवं सरकारी प्रयासों के कारण ये अपनी अस्मिता बचा पा रहे हैं अन्यथा देखा यह जा रहा है कि सरकारी विद्यालय के समानान्तर चलने वाले निजी विद्यालयों में छात्र संख्या अधिक पाई जाती है। इसके कई कारण हैं विद्यालय में स्टाफ की कमी, संकाय में विषयाध्यापकों का न होना, प्रयोगशाला पुस्तकालय का न के बराबर उपयोग होता, इन्फ्रास्ट्रक्चर की कमी, जल व्यवस्था सुचारू न होना, अध्यापकों के देर से आना जल्दी शिक्षण कार्य के प्रति उदासीन होना, गैरशैक्षिक कार्यों में संलग्नता, मिड-डे मिल की व्यवस्था, गणित, अंग्रेजी, विज्ञान, कॉमर्स विषय के अध्यापकों की कमी, निरीक्षकों द्वारा सघन एवं निरन्तर निरीक्षण न होना, प्रशासनिक अधिकार न होना, राजनीतिक हस्तक्षेप

आदि कारणों पर सरकार को ध्यान देना चाहिए। शैक्षिक गुणवत्ता में कमी को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

निजी विद्यालय-अभिभावकों में यह आम धारणा बनती जा रही है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती है। इसीलिए प्रारंभ में बालक को नर्सरी से निजी विद्यालय में रखे जाने का प्रयत्न करते हैं। देहली, मुम्बई, पूना, कोलकाता, अहमदाबाद जैसे शहरों में तो नर्सरी में प्रवेश हेतु पात्रता परीक्षा, डोनेशन, सिफारिश की मारामारी के बाद भी महँगा शुल्क देकर प्रवेश दिलाते हैं। यह दर्शाता है कि आम नागरिकों में भी निजी विद्यालय के प्रति कितना आकर्षण बढ़ रहा है। निजी विद्यालय अलग-अलग श्रेणी के होते हैं। हिन्दी/अंग्रेजी माध्यम प्राथमिक से उच्च माध्यमिक तक, आवासीय विद्यालय, प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए संस्थान जहाँ शिक्षण के साथ, गृहकार्य, समस्या निराकरण नवीनतम तकनीक का प्रयोग, अनुभवी शिक्षकों एवं सतत् मूल्यांकन करने वाले निजी विद्यालय संचालित हो रहे हैं।

ट्यूशन सेन्टर-राजकीय विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता में तुलनात्मक रूप से कम होती है। इसलिए छात्र को निजी ट्यूशन की आवश्यकता होती है। इसका एक कारण यह भी है कि कुछ अभिभावक अपने बालक पर पूरा ध्यान न दे पाने के कारण तथा बालकों को महँगे निजी विद्यालय या कोचिंग संस्थानों की फीस न दे पाने के कारण अभिभावक परीक्षा के पूर्व 2 से 3 माह के लिये बालक को गणित, अंग्रेजी, विज्ञान, कॉमर्स के लिए ट्यूशन कराते हैं। जिन कक्षाओं में बोर्ड परीक्षा होती है, उसके लिए विषयाध्यापक के पास ट्यूशन कराते हैं। निजी ट्यूशन प्रवृत्ति बाजार में समाज को गरीब और अमीर दो वर्गों के बीच की खाई को और अधिक चौड़ा कर दिया है। इससे आर्थिक असमानता के साथ शैक्षिक असमानता भी तेजी से बढ़ती जा रही है। अल्प आय वाला व्यक्ति ट्यूशन की राशि खर्च न कर पाने के कारण बालक की असफलता पर मन मसोस कर रह जाता है। इसके चलन का कारण सरकारी विद्यालयों में स्टाफ की कमी, विषयाध्यापकों द्वारा कक्षा शिक्षण में उदासीनता एवं ट्यूशन मानसिकता वाले अध्यापकों द्वारा सैद्धांतिक आन्तरिक मूल्यांकन अंक एवं प्रायोगिक विषयों में अंक दिलाने के प्रलोभन के कारण भी निजी ट्यूशन सेन्टर चल रहे हैं।

कोचिंग संस्थान-वर्तमान राजकीय विद्यालयों की शिक्षण व्यवस्था का स्थानापन्न कोचिंग व्यवस्था है। सभी शहरों में कोचिंग संस्थानों की भरमार है। यह व्यवस्था कोचिंग प्रबंधक के लिए भी उपयुक्त एवं वित्तीय व्यवस्थानुसार चलने वाला उद्योग है। स्वयं का भवन न होने पर किराये के भवन जिसमें 4-5 बड़े कमरे हों, कोचिंग सेन्टर चलाया जा रहा है। इसको सरकार से मान्यता की आवश्यकता भी नहीं है और न कागजी सूचना की परेशानी होती है। कक्षा कक्षों में छात्रों के पर्याप्त बैठने की संख्या के अनुसार बैच बनाकर, विषयाध्यापक की उपलब्धता के अनुसार बैच बनाकर कोचिंग सेन्टर चलाये जा रहे हैं। व्यवस्थापक क्षेत्र के कर्मठ सेवानिवृत्त शिक्षकों, प्रशिक्षित बेरोजगार (एम.ए., पी.एच.डी. धारकों) को अनुबंधित कर शिक्षण कार्य करा रहे हैं। कोचिंग संस्थानों का उद्देश्य छात्र को प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता दिलाने हेतु अनुभव जन्य सलेक्टेड स्टडी, परीक्षा में कैसे अधिक अंक प्राप्त कर सकें, इस तकनीक से शिक्षा देते हैं। कोचिंग सेन्टर में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या भी रहती है जिन्होंने परीक्षा केन्द्र की दृष्टि से सरकारी विद्यालय / महाविद्यालय में औपचारिक प्रवेश लिया है, जहाँ वे मात्र परीक्षा देने जाते हैं, अध्ययन कोचिंग सेन्टर में करते हैं। बड़ी-बड़ी कोचिंग केवल भ्रामक विज्ञापनों, अच्छा परीक्षा परिणाम, बहुत सारी फैकल्टीज के चेहरे दिखाकर चला रहे हैं। हैदराबाद, बैंगलोर, पूना, मुम्बई, चेन्नई, देहली, जयपुर, कोटा, सीकर आदि शहरों में एम.बी.ए., सी.ए., जेइई, नीट, सेट, क्लेट, आई.एस.आई., सी.एस. फाउण्डेशन, एआईएमएस जैसे विषयों पर पैकेज से एवं सशुल्क कोचिंग दे रहे हैं। उच्च गुणवत्ता वाले कोचिंग संस्थान बहुत महँगे होते हैं। कोचिंग संस्थानों का जितना प्रचार प्रसार हो रहा है उतने ही प्रश्न भी उठ रहे हैं। परिणाम की दृष्टि से देखें तो जितने प्रविष्ठ विद्यार्थी हैं वे सभी उत्कृष्ट परिणाम नहीं ले पाते हैं। अधिक कार्य गृहकार्य के कारण तनाव में रहते हैं और आत्महत्या जैसे प्रकरण हो रहे हैं। अधिक खर्चीले भी होते हैं।

ई-लर्निंग-तकनीक के इस युग में ई-लर्निंग से दूरस्थ शिक्षा प्रदान की जा सकती है। यह प्रसार व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए अनेक दृष्टि से उपयुक्त तकनीक है यह औपचारिक शिक्षा के लिये उत्तम वैकल्पिक साधन है। इण्टरनेट आधारित शिक्षा बाद में वैब आधारित प्रशिक्षण कहा गया जो आज परिवर्द्धित होकर ऑनलाईन व ई-लर्निंग हो गया है। इस व्यवस्था में कक्षाकक्ष या भौतिक साधनों की मदद के बिना ही ज्ञानवर्द्धक विषय संबंधी जानकारी दी जा सकती है। इसके द्वारा पाठ्यक्रम और प्रोग्राम ऑनलाईन कम्प्यूटर व इण्टरनेट माध्यम से होता है। ई-लर्निंग में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम उपलब्ध होते हैं जिससे विद्यार्थी रुचि के अनुसार, समय की उपलब्धता के अनुसार व्यवसाय प्राप्ति के अवसरों में सहायक होते हैं। इस पद्धति से उच्च श्रेणी के कोचिंग संस्थानों के भारी भरकम शुल्क से बच सकते हैं तथा सुविधानुसार समय में अध्ययन किया जा सकता है। ❑

(शिक्षाविद् व स्वतन्त्र लेखक)

कोचिंग का मायाजाल

❑ प्रियंका कुमारी गर्ग

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय का विशिष्ट महत्त्व रहा है। शतक का अनुमान कर जीवन की चार अवस्थाओं को चार निश्चित कार्यों के लिए नियत किया गया है। जिस तरह किसी भी इमारत के निर्माण में सर्वप्रथम भूमिका नींव की होती है, उसी प्रकार जीवन में भी ब्रह्मचर्य को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। इसी अवस्था को विद्यार्जन के लिए नियत किया गया है। भारतीय परंपरा में शिक्षा मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत एवं जिम्मेदार नागरिक बनाने के प्रयोजन से दी जाती रही है। 'सा विद्या या विमुक्तये' की भारतीय संस्कृति में माता-पिता की बढ़ती महत्त्वाकांक्षा और समय पर कुछ अधिक करने के छात्र के दबाव ने विद्या को व्यवसाय में परणित कर दिया है। जिससे वर्तमान में 'सा विद्या या नियुक्तये' की उक्ति सार्थक हो रही है। विद्यार्थी के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास को दरकिनार कर केवल और केवल सर्वोच्च अंक लाने की होड़ ने कोचिंग संस्थानों के बढ़ने में मदद की है। विशेष रूप से इंजीनियरिंग और मेडीकल के क्षेत्र से प्रारंभ हुआ कोचिंग का गोरख धंधा इतना बड़ा जाल बन चुका है जिसमें तनाव और दबाव की बढ़ती मात्रा ने न जाने कितने छात्रों के साँसों की डोर तोड़ दी है।

कोचिंग संस्थानों में कोटा जैसे कुछ विशिष्ट स्थान अपनी सफलता प्रतिशत के कारण राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हो चुके हैं। कोटा में सफलता प्रतिशत लगभग 30 रहता है जो एक बहुत बड़ा मानक है। पर इसके साथ ही आत्महत्या की बढ़ती संख्या इस बात पर सोचने को मजबूर करती है कि सफलता की ओर बढ़ते इन मेधावी विद्यार्थियों के पास दूसरे विकल्प की खोज की बजाय आत्महत्या ही अंतिम विकल्प क्यों है? मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय द्वारा भी इस विषय पर एक गंभीर चर्चा प्रारंभ हो चुकी है। विभिन्न कोचिंग संस्थानों में देश भर के मेधावी विद्यार्थी प्रवेश लेते हैं। वहाँ उनकी प्रतियोगिता अपने जैसे ही बच्चों से होती है। बालक जिस सपनों के आकाश में स्वयं को सर्वोच्च समझ रहा होता है,

माता-पिता द्वारा विद्यार्थियों पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का बोझ डालना भी इस तनाव को अवसाद में बदलने का प्रमुख कारण है। आज कोई भी माता-पिता अपने बच्चे को डॉक्टर और इंजीनियर (वह भी आईआईटियन) से कम बनाने के बारे में सोचता ही नहीं है। आर्थिक और भावनात्मक दबाव विद्यार्थियों को माँ-बाप से अपनी असमर्थता जाहिर करने से रोक देता है। माँ-बाप बच्चों पर पढ़ाई का इतना बोझ डाल देते हैं कि उनमें छुपा एक कलाकार समय से पहले ही दम तोड़ देता है। बच्चों के मनोविज्ञान की अनदेखी पर बनी एक सफल फिल्म 'तारे जमीं पर' में शिक्षक के शब्दों में छात्र की वेदना उसके माता-पिता के सामने बाहर निकलती है- 'हर बच्चे की अपनी खूबी, अपनी काबिलियत, अपनी चाहत होती है पर कोई समझना नहीं चाहता।

वहाँ से नीचे आने पर वह पहली बार एक विशिष्ट तनाव को महसूस करता है। उस प्रतियोगिता में थोड़ा भी पिछड़ने पर वह एक विचित्र तनाव और अपराध बोध से भर उठता है। कोचिंग संस्थानों की दिनचर्या भी विद्यार्थी के इस तनाव को बढ़ाती ही है। कोचिंग संस्थान अपनी सुविधानुसार सुबह जल्दी अथवा देर रात तक 5-6 घंटे लगातार कक्षाएँ नियोजित करते हैं। लगभग एक-दो घंटे अतिरिक्त विद्यार्थी अपने संशयों का निराकरण वहीं रुककर करते हैं। लंबी-लंबी वर्कशीट्स और दोहरान का दबाव छात्रों को अनिद्रा और तनाव का शिकार बना देता है। साथ ही साथ मनोरंजन का अभाव और मैस का खाना इसमें 'करेला और नीम चढ़ा' का काम करता है।

माता-पिता द्वारा विद्यार्थियों पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का बोझ डालना भी इस तनाव को अवसाद में बदलने का प्रमुख कारण है। आज कोई भी माता-पिता अपने बच्चे को डॉक्टर और इंजीनियर (वह भी आईआईटियन) से कम बनाने के बारे में सोचता ही नहीं है। आर्थिक और भावनात्मक दबाव विद्यार्थियों को माँ-बाप से अपनी असमर्थता जाहिर करने से रोक देता है। माँ-बाप बच्चों पर पढ़ाई का इतना बोझ डाल देते हैं कि उनमें छुपा एक कलाकार समय से पहले ही दम तोड़ देता है। बच्चों के मनोविज्ञान की अनदेखी पर बनी एक सफल फिल्म 'तारे जमीं पर' में शिक्षक के शब्दों में छात्र की वेदना उसके माता-पिता के सामने बाहर निकलती है- 'हर बच्चे की अपनी खूबी, अपनी काबिलियत, अपनी चाहत होती है पर कोई समझना नहीं चाहता। उँगली को पकड़ कर लंबी करने में लगे हैं सब लोग। फिर चाहे उंगली ही क्यों न टूट जाए।' कोटा की एक छात्रा कीर्ति त्रिपाठी ने अपने आत्महत्या पत्र में लिखा कि जितनी मुझे आशा थी मैंने उससे अधिक अंक प्राप्त किए। पर अब मैं इससे अधिक ये सब नहीं करना चाहती। मैंने मेरे बहुत सारे मित्रों को अवसाद से बाहर निकाला पर अचरज है आज मैं खुद ये कर रही हूँ। माता-पिता की बढ़ती उम्मीदों का ठीकरा विद्यार्थियों के जीवन पर फूटता है। जिस कठिन समय में विद्यार्थियों को भावनात्मक संबल की आवश्यकता होती है, माता-पिता उन्हें इमोशनल ब्लैकमेल कर रहे होते हैं। 'अपना सब कुछ बेच कर भी बच्चों का कॅरियर बनायेंगे' ये शब्द बच्चों को ऊर्जावान नहीं बनाते बल्कि एक विचित्र भय से भर देते हैं। कोचिंग संस्थानों पर विद्यार्थियों की बढ़ती निर्भरता भी चिंता का विषय है। कोचिंग विशेष के अनुसार ही विद्यार्थी स्वमूल्यांकन करता है। कभी-कभी साल भर अपनी कोचिंग की जाँचों में अच्छे अंक प्राप्त करने वाला विद्यार्थी मुख्य परीक्षा में अपना स्थान नहीं बना पाता। ऐसी स्थिति विद्यार्थी के मानसिक स्वास्थ्य को डावांडोल बना रही है।

कोचिंग संस्थान परीक्षा के पैटर्न की समझ उसी के अनुसार तैयार कराते हैं जिसमें सफलता की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। हार्वर्ड सिद्धांत के अनुसार कोचिंग संस्थान पहले से ही मेधावी विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं और सफलता का श्रेय स्वयं प्राप्त कर लेते हैं। ये कोचिंग संस्थान विद्यार्थियों की रचनात्मकता को समाप्त कर केवल रट्टू तोतों की गिनती ही बढ़ा रहे हैं।

कोचिंग संस्थानों के मायाजाल को तोड़ने के लिए सरकार को कुछ विशिष्ट कदम उठाने चाहिए। छठवीं कक्षा से फाउण्डेशन कोर्स की पढ़ाई बच्चों के बचपन को लीलती जा रही है। सरकार द्वारा इसमें अपना दखल दर्ज कराना चाहिए। कोचिंग संस्थानों में योग, मेडिटेशन और खेल जैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को स्थान दिया जाना चाहिए। जब तक इनकी नियमितता अनिवार्य नहीं की जाएगी, कोई भी संस्थान इन्हें क्रियान्वित नहीं करेगा। परीक्षा प्रारूप में भी रचनात्मकता को स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। परीक्षा केवल रटने और कमाने के लिए नहीं, बल्कि कुछ सीखने की पद्धति को विकसित करने वाली हो। माता-पिता को भी अपनी सोच में बदलाव करना आवश्यक है। बालक की रुचियों को ध्यान में रखकर कुछ बेहतर विकल्पों की ओर भी जाना चाहिए। थ्री इडियट्स फिल्म के फरहान की तरह जो अपने पिता से कहता हो, 'मैं इंजीनियर बनकर कमा तो लूँगा पर खुश फोटोग्राफर बनकर ही रह पाऊँगा।' माँ बाप को बच्चों के निर्णय का सम्मान करना चाहिए। कोचिंग शिक्षा के पडाव में एक पायदान ही बने रहें, वे गले की रस्सी न बनें। ❑

(सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय)

As a matter of fact, coaching centres do not perform wonders, they simply train the minds of people for a given objective. To clear a medical entrance examination, there is an established pattern of techniques of training aspirants, to clear engineering entrance examinations, there is yet another technique and pattern of training and so on and so forth. Aspirants are repeatedly made to do hard work until they reach an expected level of clearing examinations. Such repeatedly repeating repetitions eventually lets the aspirant through examinations, provided an aspirant does not become fed up with the whole process and quits.

Coaching Culture and Education

❑ **Dr. T. S. Girishkumar**

It is interesting to note that the first use of the term coach with respect to a trainer or instructor originated somewhere around CE 1830 as an Oxford University slang. This implied that the coach shall be a tutor or instructor who should be "carrying" students through examinations, to oversee that the students come successful in their examinations. From this, the concept of 'coaching' began, that is to mean that coaching is an activity of carrying one from where one is to where one wishes to reach, or be.

Prima facie this appears to be a noble attitude, of helping one to reach their goals, distinction or wishes. Everyone might need such guidance and advices along with instructions in their attempt to reach set goals in life, and it is always soothing to know that there are noble souls who shall provide such guidance.

In Bharat, there are different types of teachers. Among them, the distinctions between an Acharya and Upadhyaya becomes very instructive here. Upadhyaya is Upa – Adhyayaka, meaning a sub teacher or even assistant teacher. Etymologically, this must have come into being as the Upadhyayas used to teach Vedangas, in all likelihood. But the important difference between Upadhyaya and Acharya is something else, Upadhyaya takes remuneration for his teaching profession, which is akin to taking some fees. Acharya does not take any fees for his teachings, he takes only 'Dakshina', however small or big. (Manu Smriti : 2:141). Usually, Acharyas have their own 'Gurukulas' where there is a continuous and constant association of the Acharya with students. Let us not confuse the ancient Gurukula teaching with the present four walled and closed class room teachings with restricted timings. The Acharya keeps doing things, may be farming, cattle or crops or whatever, and the students are constantly with him. They keep conversing, discussing whatever to be discussed. Farming also goes on, teaching and learning also goes on. People in the Gurukula make their living a co-activity in this manner, both teacher and student working together, learning together ad infinitum. (let us recall the Upanishadic Mantra, Sahanavavatu….). Precisely for this reason, the Acharya does not want regu-

lar fees from the students, they all work together and live together, and in the process, all kinds of knowledge is being imparted. Obviously, this shall not be termed coaching.

Towards an understanding of education

Bharatiya knowledge tradition had ever well understood the concept of education. In modern times, we have Mahatma Gandhi thinking in terms of what ought to be education and he just termed it as 'NaiTalim', and the point he insisted is 'education should not be a pouring in activity, it must be a drawing out activity'. In simple terms, education should not be stuffing information in the minds of pupils, it must be such that education must bring out the inherent abilities in each. Maharishi Gautama stated this in much stronger and clearer terms right in the third century BC itself, when he said that what one knows must affect the knower. Knowledge must affect the knower through a process of refining the knower, to make him a better human being for general social good apart from the individuals own refinement. Let us understand education as a process of instilling all noble qualities in the minds of people and making refined human beings from raw or unrefined human existence. (we have the Rg Veda that say "Ano Bhadra, KrtavoYanthuViswatha – 1.89:1). And indeed, precisely this is what makes the entire process of education noble and sacred. The entire objective of any education must be to make better, refined, cultured as well as noble human existence a reality and certainly not people with much information loaded in them, and yet callous. One objection to such education may be that, it just creates intellectual monsters and not human beings. Existence without soul shall be like flowers without fragrance or beauty: artificial flowers may be very beautiful, but no one takes them for puja. In all, let us remember that education has a deep purpose beyond merely instilling information in the minds of people, merely coaching people to a given desideratum to attain some stipulated goal and coaching people to be immediately fruitful.

Education through coaching and coaching centres

It is a matter of fact that our present world is a highly competitive world. Right from the first day in the school, children are trained to compete one another, to get more marks from one another. Both parents and teachers are a party to this process, along with the society all over the world. Since the entire system functions in this given manner, it is extremely difficult for anyone to even think of a possible way out.

The importance and inevitability of coaching and coaching centres has become something like an irresistible leprosy that one is compelled to endure it as it has no cure at sight. For any competitive examinations, it is highly improbable for one to clear them without attending to coaching classes, as the whole system got so mechanised into such things. At the same time, it is also not easy to blame the system too, as we see no other meaningful alternative to such systems of examinations to find apparently suitable people.

As a matter of fact, coaching centres do not perform wonders, they simply train the minds of people for a given objective. To clear a medical entrance examination, there is an established pattern of techniques of training aspirants, to clear engineering entrance examinations, there is yet another technique and pattern of training and so on and so forth. Aspirants are repeatedly made to do hard work until they reach an expected level of clearing examinations. Such repeatedly repeating repetitions eventually let the aspirant through examinations, provided an aspirant does not become fed up with the whole process and quits. One must also remember that the parents start such training much before in time and at a very early stage in the schools.

If these are for admissions, then there are different types of coaching for different types of jobs. The highest among them is obviously civil services and then there are all kinds of coaching and techniques towards such coaching pertaining to different kinds of jobs. It is also a fact that average students

can not clear any of these job fetching examinations without such coaching.

Education and coaching

One need not make any demonstration that education and coaching are two entirely different phenomena, perhaps one contradicting the other, as it is too obvious. It is also obvious that coaching is far flung from education what it ought to be; and not just that, coaching is actually destroying what education ought to be. And we are here, now, with the predicament that coaching is what people actually go for to make themselves successful in life and coaching is destroying the real spirit of education. This indeed, becomes the two horns of a dilemma, and one really will not be able to find a way out of this predicament leading to a helpless and bitter paradox.

It appears that we have no way out of this quagmire, and yet, through time, it may be possible for us to make some kind of synthesis among the two, trying our best to synthesise the positive sides from both. Let us accept that given our present society and need of time we should not turn our faces away from coaching centres, but at the same time, let the coaching centres also instil given amount of values into their programme. We, in Bharat, have abundance of Dharma related instructions in our Sanskriti and it is natural for our young minds to find them both interesting and meaningful without any extra efforts. Let there be considerable amount of space and time for training upon Dharma with coaching programme, and there is no doubt that people in general shall be only happy about such improvisations.

Further, let us accept that coaching is necessary for all kinds of functional reasons, but let us also realise that coaching has a purpose and it should be done away with sooner it serves the purpose. Let us remain conscious that coaching has only instrumental value, and it is just a condition to reach desired goal. Once the goal is attained, it should be possible for us to get rid of the unwanted technicalities from coaching instructions and march towards what is intrinsic in education. Though, at first, it may appear that the situation appears hopeless, it really is not the case. It is just that we should know where to put a stop to what, and where to begin what for what purpose. In short, it must be possible for us to take advantage of coaching and at the same time from education through Bharatiya values and Sanskriti for which our society is extremely good and capable. Consider ourselves immensely fortunate that we are born into Bharatiya Sanskriti, which is immensely capable of solving all kinds of difficulties and predicaments we are likely to come across given varying time and space. Like Maharishi Aurobindo did, run to the Vedas for all solutions, and let me modify: turn to the Vedopanishadic knowledge traditions for all solutions. ❑

(Member, Indian Council of Philosophical Research, New Delhi)

Shradhanjali

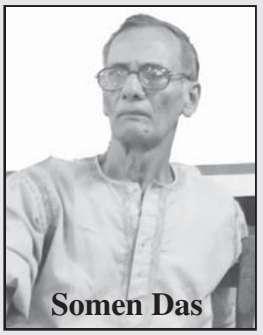
Somen Das

A star has fallen from the Hindu samaj in Bengal. He was the teacher leader Shri Somen Das. From 1994, he has worked tirelessly in Bangiya Nabaunmesh Prathamik Shikshak Sangha (B.N.U.P.S.S), (affiliated to A.B.R.S.M), an association of primary teachers in West Bengal, who were deeply influenced by the ethos of RSS. Along with Sri Ajit Biswas, he has been working tirelessly for the association from its moment of inception. He was the President of B.N.U.P.S.S and he was toiling away for its welfare in these tumultuous times even at this advanced age. The present General Secretary of the Association Sri Kanupriya Das lamented, "We have lost our guardian. Not only ourselves, his wife Smt. Rinabhadra Das and their only son Shivasish Das who is 39 years old has lost their guardian. In this time of distress, we stand by the grief-stricken family ready to give help. We are deeply mournful at the sudden passing away of respected Shri Somen Bose on 16th May, 2019, Shri Somen Bose lost his life due to an accident in his own home. His loss will be felt in many quarters. He had been a teacher of Bengali at Jadavdpur Vidyapeeth. He had also been an acharya at Shishu Mandir and had carried out his duties efficiently and responsibly. Besides being associated with the teachers organization, he was also a karyakarta of Hindu Jagran Manch. He was a dedicated worker for the Sangha. His sudden death has robbed many Hindu organizations at Maheshtala of their guardian. May his soul and peace in heaven.

Technical Education In Rajasthan

❑ **Dr. A. K. Gupta**

The technical education in Rajasthan is declining day by day. It is evident from the figure of budding engineers who are seeking admission to course. It is very clear from the data observed so far. Reasons may be numerous to think about. Some of them are discussed below:- 1. Parents want to see that their ward becomes an earning source after four years. 2. Firms think about the product they are getting. 3. The college may think about their data to enrich, to name a few.

The Self Finance Scheme Institution have bad effects so to say. Because they have to manage everything out of their income only i.e. the fee collected from the students , salary of Teaching and Non Teaching Staff in addition to what is left for the developmental activities. Additionally they have to look after staff promotions.

On the other hand students have to face some problems they have to get same degree on higher price. They are getting same classes on higher price when compared to the GAS courses. In some Institution the SFS and GAS streams may be mixed up either in the same batch or may be different batches. In II year some students can get rid of all this by change of branch.

In case of GAS scheme, the institution has to depend on the Government Funding for running the institution. Any institution may consists of Teaching and Non Teaching Staff, facilities provided to students and staff, may it be stationary shop or sports or students activities centre or dispensary etc.

The Institutions fall in different categories namely I I T, MBMEC, MNIT, Govt Engg Colleges (affiliated to a university or constituent to it), Colleges which are part of a society & for academic purposes it is affiliated to some university, or totally private governed by the University & may be constituent to it. The next category may be termed as Govt or private Polytechnic either technical or non technical & further next category may be termed as Govt or private I T Is. However Government has taken a note of the institutes in last two categories & has put separate directorate for Polytechnic and I T Is, but the same is not thought of the other category which is even higher i.e. Engg. All other engineering colleges are left without thinking about various day to day problems. My strong perception is in favour of a separate directorate for engineering as well.

Why an aspirant is put to opt SFS Course or to repeat for Competitive exams, why not only GAS is left the only option available, to him or her to decide and not the politicians to put up Engg Colleges for the sake of vote banks. Any institution may consists of three branches namely Academics, Administration and the Financial. Similar is the case of Academics where it's affiliation with the University is important. Right from admission to Examination necessary for award of degree has to be diligently considered. Similar is the case of administration where one has to depend on many factors deciding upon working of the institute. Similarly one should think over the Financial matters. Because it is Important that the matter may not lose it's gravity. It should be run by paying salary of the staff by Government, because it is the matter of centre & state. The other developmental activities should depend upon how much better the institution is in a position to attract the students. Government officials should plan diligently so as satisfy each stakeholder. These could be made interesting by inducing transfer of individuals on the basis of their performance but not more than once a year.

If a student fails to satisfy his/her employer the fault may lie in his/her training during four years time. It is not only on part of student but also on faculty/planners. The syllabus should consider all this by way of providing ample opportunity to the students for industry-institute interaction.

The Institution may like to use the data for placement of their students for them to remain in competition with their counterparts. It is not only on part of Engg Colleges but also on industry providing employment. Thus they may use measures suitable to them.

Thus it is important the state and central government to pay their attention on this burning issue. ❑

(Prof. Structural Engineering Department, MBMEC, JNVU, Jodhpur)

विषय को उसकी समस्त गहराइयों के साथ आत्मसात किये बिना ही केवल रट्टू तोता बनकर इतने अधिक अंक प्राप्त कर लेना किसी भी प्रकार से अत्यंत उच्च कोटि की प्रतिभा का पैमाना नहीं कहा जा सकता। यह नितांत सत्य है कि विद्यार्थियों में रटने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। समाचारपत्रों में प्रकाशित 70 नगरों के 7500 विद्यार्थियों पर किये गये क्विज नेक्सट एप के एक सर्वे के अनुसार तो विद्यार्थी गणित तक में यही तकनीक अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो निश्चित रूप से हास्यास्पद है। इस प्रवृत्ति के कारण ही उक्त सर्वे के अनुसार, बिना कीवर्ड आधारित प्रश्नों के उत्तर की सटीकता मात्र 63 प्रतिशत रहीं जबकि कीवर्ड आधारित प्रश्नों में यह प्रतिशत बढ़कर 86 तक जा पहुँची।

अंकों की बरसात

❑ डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (C.B.S.E.) का इस वर्ष का 12वीं का परीक्षा परिणाम 24 मई को घोषित कर दिया गया। सफल विद्यार्थियों का प्रतिशत 80 से ऊपर (83.4) रहा। टॉप के विद्यार्थियों का प्राप्तांक 500 में 498 तथा द्वितीय स्थान वालों का 497 रहा। और यह तो केवल बानगी है। देश की अन्य परीक्षा एजेंसियों के परिणाम भी इसी प्रकार के रहे हैं। मई मास में ही अलीगढ़ विश्वविद्यालय के विद्यालयों के दसवीं कक्षा के परिणामों में टॉपर विद्यार्थी 97 प्रतिशत अंक लाने में सफल रहे। स्पष्ट है कि टॉप करने वालों ने लगभग प्रत्येक विषय में शत् प्रतिशत तथा द्वितीय स्थान वालों ने कहीं एक दो अंक कम प्राप्त किये। आज से आठ दस वर्ष पूर्व देश के विभिन्न बोर्डों के परिणामों के प्राप्तांकों से इनकी तुलना करने पर सर चकरा जाता है। परंतु यह एक नयी प्रवृत्ति (Trend) है – प्राप्तांकों की बरसात का Trend।

केन्द्रीय बोर्ड की एक टॉपर, हंसिका को तो मलाल ही रह गया कि अंग्रेजी के प्रश्नपत्र में एक अंक कट कैसे गया। अवश्य ही आज का विद्यार्थी अद्भुत प्रतिभा का धनी है। परन्तु क्या सचमुच ऐसा है अथवा प्राप्तांकों की यह बरसात विद्यार्थी की रटने की क्षमता का प्रकाशन मात्र है? यदि वास्तव में ऐसा है तो यह अत्यंत दुखद है। विषय को उसकी समस्त गहराइयों के साथ आत्मसात किये बिना ही केवल रट्टू तोता बनकर इतने अधिक अंक प्राप्त कर लेना किसी भी प्रकार से अत्यंत उच्च कोटि की प्रतिभा का पैमाना नहीं कहा जा सकता। यह नितांत सत्य है कि विद्यार्थियों में रटने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। समाचारपत्रों में प्रकाशित 70 नगरों के 7500 विद्यार्थियों पर किये गये क्विज नेक्सट एप के एक सर्वे के अनुसार तो विद्यार्थी गणित तक में यही तकनीक अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो निश्चित रूप से हास्यास्पद है। इस प्रवृत्ति के कारण ही उक्त सर्वे के अनुसार, बिना कीवर्ड आधारित प्रश्नों के उत्तर की सटीकता मात्र 63 प्रतिशत रहीं जबकि कीवर्ड आधारित प्रश्नों में यह प्रतिशत बढ़कर 86 तक जा पहुँची।

स्थिति कुछ ऐसी बन चुकी है कि 90 प्रतिशत से नीचे वालों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। वस्तुत: प्राप्तांकों के प्रतिशत के साथ परिवार की अपनी प्रतिष्ठा तक जुड़ चुकी है। इसीलिये विद्यार्थी पर अधिक से अधिक अंक लाने का अत्यधिक दबाव रहता है। यह दबाव ही अंतत: उसे रट्टू तोता बनने को विवश कर देता है ताकि अंक प्राप्त हो सकें, विषय की समझ का विकास हो या न हो। इस पूरी प्रक्रिया में उसकी अपनी

मौलिकता और रचनात्मकता की पूरी तरह बलि चढ़ जाती है। विद्यार्थी की अपनी ईश्वर-प्रदत्त विशिष्ट प्रतिभा का विकास कुंठित हो जाता है और अंततः वह एक मशीनी मानव भर बन कर उभरता है। इस वर्ष के ही परिणाम को लें। केंद्रीय बोर्ड की टॉपर करिश्मा कपूर को नृत्य करना पसंद है। परंतु अंकों की इस चूहा दौड़ में वह कितना समय अपने इस शौक को दे पाई होगी यह सोचने का विषय है। यह दौड़ अंततः कितनी मौलिक प्रतिभाओं को कुचल देती होगी यह समझ पाना कठिन नहीं है। इस दौड़ में बुरी तरह लिप्त होने के कारण न तो विद्यार्थी को खेल कूद के लिये समय मिल पाता है, न ही पाठ्यपुस्तकों से इतर पुस्तकों को पढ़ने का और न ही किसी प्रकार की ललित कला साधना का।

इस दौड़ के अंत में जीवन में प्रवेश करने के पश्चात जब कुछ कुंठित प्रतिभायें अवसर मिलने पर उभर कर सामने आ जाती हैं तब समाज आश्चर्यचकित रह जाता है। उदाहरण के रूप में लेखक अपने एक अभिन्न मित्र के पुत्र को सामने रख सकता है। इसी दबाव के आगे आत्मसमर्पण कर वह एक तकनीकी विशेषज्ञ बन गया और तब जाकर परिस्थितियों वश उसे थोड़ा समय मिल पाया। इसका पूरा उपयोग उसने अपनी प्रारंभिक रुचि के विकास अर्थात् हिन्दी साहित्य के गहन अध्ययन में लगा दिया। परिणाम यह हुआ कि एक दिन लेखक ने उसके द्वारा हिंदी में लिखित कुछ पढ़ा तो भाषा की शुद्धता और पैने वाक्य विन्यास को देख कर चकित हो गया। एक तकनीकी विशेषज्ञ से ऐसी साहित्यिक भाषा की अपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती थी। स्पष्ट है कि यदि प्रारंभ से अवसर मिला होता तो उसे कुल अंक तो संभवतः कम मिले होते (और वह तकनीकी क्षेत्र में प्रवेश न कर पाता) परंतु निश्चित रूप से वह एक प्रथम कोटि के साहित्यकार के रूप में समाज में स्थान पाता। अवश्य ही प्राप्तांकों की बरसात न तो विद्यार्थियों में प्रतिभा के अधिकाधिक उत्थान का प्रतीक है और न ही उनमें विषयों की गहराती समझ का। वह तो एक ऐसा वज्र है जो उसकी स्वयं की मूल प्रतिभा का अधिकाधिक हनन कर अनेकानेक क्षेत्रों में बहुमूल्य प्रतिभाओं से देश को वंचित रख रहा है।

वर्तमान पद्धति से तो हम देश के लिये रटने वाले छात्रों की जमात ही पैदा कर रहे हैं, विद्वान नहीं।

शिक्षा की आधुनिक पद्धति में विद्यार्थियों में मौलिकता के जागरण का जो रहा सहा अवसर होता है, वह भी multiple choice answers वाले प्रश्न पत्र के प्रारूप में समाप्त हो जाता है। लंबे उत्तरों वाले प्रश्न जहाँ विद्यार्थी की कल्पनाशक्ति, रचनात्मकता एवं मौलिकता को आंदोलित करते हैं, वहीं पहले प्रकार के प्रश्न इन्हें मसल डालते हैं। ऐसे ही प्रश्न, रटने की पद्धति को भी बढ़ावा देते ही हैं। अभी कुछ समय पूर्व प्रतिज्ञान दास को दिये गये साक्षात्कार में केंद्रीय बोर्ड की गवर्निंग बॉडी की पूर्व सदस्या उषा राम ने स्वीकार किया कि गलत परंपरायें स्थापित की जा रही हैं। उन्होंने कहा कि विषय के गंभीर अध्ययन के माध्यम से ज्ञान संवर्धन, अधिकाधिक प्राप्तांक पाने की होड़ से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यही देश के हित में भी है। प्रश्नपत्र में प्रश्न गंभीर और विवेचनात्मक होने चाहिये। स्वाभाविक है कि इनके लिये विद्यार्थी अपने मस्तिष्क पर जोर डालेगा और ज्ञान के अपने कोष को खंगाल कर नितांत मौलिक कोटि के लंबे उत्तर लिखेगा।

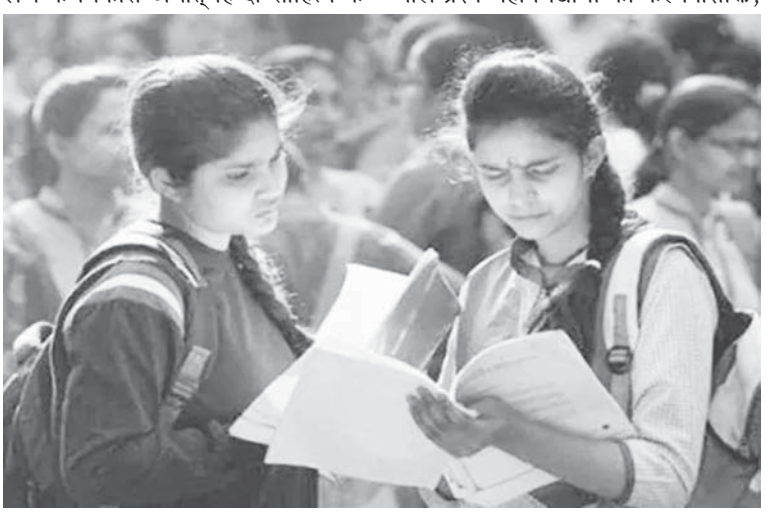

वस्तुतः पहले यही होता भी था और हमें सौ प्रतिशत न सही तो साठ सत्तर प्रतिशत तक इसी पद्धति पर पुनः लौटना होगा यदि हम विद्यार्थी की मौलिक प्रतिभा कुचलना नहीं चाहते तो। इसके साथ ही हमें पद्धति विकसित करनी होगी कक्षा में विद्यार्थी को अध्यापक के साथ प्रासंगिक रुप से खुल कर सवाल जवाब के लिये प्रेरित करने की। इसके अभाव में विद्यार्थी जो कुछ ग्रहण कर पाता है वह मात्र विषय संबंधी सूचनायें होती हैं, वह विषय की गहराइयों तक पहुँचने में असमर्थ रहता है। स्मरणीय है कि T.S. Eliot ने लिखा "Where is the knowledge we have lost in information?"

स्वागत योग्य है कि इस संबंध में अब केंद्रीय बोर्ड की भी नींद खुल रही है। निर्णय हुआ है कि मौलिक और रचनात्मक उत्तरों को अधिक अंकों के रूप में पुरस्कृत किया जाय। स्पष्टतः अभी भी सुधार और आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। फिर भी- 'देर आयद दुरुस्त आयद'। ❑

(पूर्व अध्यक्ष- रसायन विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)

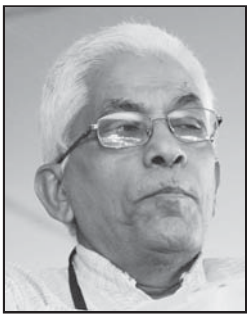

दुबारा स्पष्ट जनादेश वास्तव में जन सामान्य के जीवन में सुधार को फलीभूत करने से मिला है। स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारत का सपना सभी के लिए रोटी कपड़ा और मकान रहा है। आजादी के बाद सभी राजनीतिक दलों ने सपने तो दिखाये परन्तु अमल में नहीं लाये। पूर्ववर्ती सरकारों ने अनेक कार्यक्रम अपनाये परन्तु जन-साधारण लाभान्वित नहीं हो सका। जनसाधारण ने पहली बार अनुभव किया कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में वर्तमान सरकार ने भारी सफलता प्राप्त की। आवास रसोई गैस, आवागमन, शौचालय, स्वच्छता, स्वास्थ्य (आयुष योजना) पेंशन, किसान सम्मान निधि, गाँध-गाँव व घर-घर बिजली व बिजली आपूर्ति आदि जैसी सुविधायें प्रथम बार सम्पूर्ण देश में बिना किसी भेदभाव के सभी पात्र लाभार्थियों तक पहुँची। यह कल्याणकारी राज्य की दिशा में पहला कदम है, यह रुकेगा नहीं।

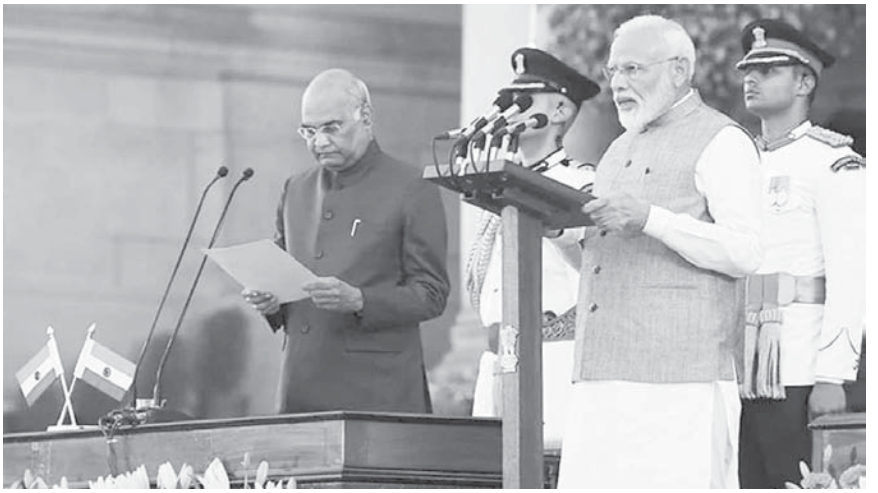

दुबारा स्पष्ट जनादेश के निहितार्थ

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

देश में हाल ही में सम्पन्न 17वीं लोकसभा के निर्वाचन में प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने एक बार पुनः दशकों की परम्परा को तोड़ते हुये प्रचण्ड बहुमत के साथ स्पष्ट जनादेश प्राप्त किया है। 2014 के चुनावों के स्पष्ट जनादेश में भाजपा को 31 प्रतिशत मत मिलने के कारण विपक्ष ने इसे एक प्रकार से मतदाता की इच्छा के विरुद्ध वाली सरकार बताने का प्रयास किया था, परन्तु भाजपा द्वारा आधे से अधिक राज्यों में 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त करने, मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस द्वारा 17 राज्यों में एक भी सीट नहीं जीतने, सपा-बसपा-रालोद गठबंधन को मात्र 15 सीटों तक समेट देने तथा पश्चिम बंगाल सहित पूर्वोत्तर में भाजपा की धमाकेदार जीत व केवल उन्हीं क्षेत्रीय दलों द्वारा सफलता प्राप्त करने जिन्होंने मोदी का विरोध नहीं किया, कतिपय उदाहरण हैं, जो कि वर्तमान सरकार की जीत की गहनता व व्यापकता को इंगित करते हैं। स्पष्ट है कि यह स्पष्ट जनादेश ही नहीं है, वरन् वर्तमान सरकार के कार्यक्रमों, स्वच्छ रीति नीति, भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन तथा देश व समाज को एक निश्चित दिशा में ले जाने की व्यापक सहमति व जन स्वीकृति का संकेतक है। यह सबका साथ, सबका विकास व सबका विश्वास के ध्येय का द्योतक है। ऐसे में इस विशाल जनादेश के क्या निहितार्थ हैं, को समझना आवश्यक है।

राजनीतिक निहितार्थ

दुबारा स्पष्ट जनादेश का अभिप्राय यह है कि 1967 से अनवरत चली आ रही खिचड़ी सरकारों व क्षेत्रीय शक्तियों, जाति आधारित व वोट बैंक की राजनीति का दौर अब समाप्ति की ओर है। मतदाता देश को सुनिश्चित व विश्वसनीय कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले दल को जनादेश देने को तत्पर हैं। वंशवाद पर चलने वाले दलों व परिवारों को पूर्णतः नकार दिया गया है। इससे राजनीतिक दलों का स्वयं को प्रजातांत्रिक ढाँचे में ढालना अनिवार्य हो गया है। आन्तरिक प्रजातंत्र लाना ही होगा। संसद में महिला आरक्षण मिले या न मिले राजनीति में दलों को समान भागीदारी प्रदान करने की ओर बढ़ना ही होगा। कालातीत हो चुकी राजनीतिक विचारधारा जैसे वामपंथ, मंडल-कमण्डल भी अब राजनीतिक पटल से विलुप्त होने के कगार पर हैं। अब तक की राजनीतिक व्यवस्था में धर्म निरपेक्षता एक बड़ी ताकत रही है। परन्तु इसकी आड़ में राजनीतिक स्वार्थ पूर्ति, देश व समाज विरोधी तत्त्वों को संरक्षण व अन्य किसी भी विचार यथा राष्ट्रवाद को कुचलने तथा निहित स्वार्थ वाले वर्ग के संपूर्ण देश पर हावी होने की प्रवृत्ति पर लगाम लगी है। तथाकथित धर्म निरपेक्षता के आवरण का जिस प्रकार से काँग्रेस ने रूपान्तरण किया, उसे भी पूर्णतः नकार दिया गया है। तथाकथित धर्मनिरपेक्षता

की आड़ में अभिव्यक्ति की आजादी दुरुपयोग हुआ है, अल्पसंख्यक वर्ग पर तुष्टीकरण के माध्यम से दमघोंटू जकड़न बनाये रखी गयी, वह पहली बार शिथित हुई, प्रथम बार अल्पसंख्यक समुदाय ने 11 प्रतिशत मतदान भाजपा के पक्ष में किया है। कार्यकर्ताओं के संबोधन में प्रधानमंत्री ने जिस प्रकार गरीबों को राजनीतिक दल से मुक्त कराने का उल्लेख किया, उसी प्रकार उन्होंने अल्पसंख्यकों को भी तुष्टीकरण द्वारा बंधुआ वोट की जकड़न से मुक्त कराने का आह्वान किया है। स्पष्ट संदेश है कि अल्पसंख्यकों को राष्ट्र जीवन की मुख्य धारा में भागीदार बनने तथा सबका साथ, सबका विकास व सबका विश्वास के साथ आगे बढ़ने का आमंत्रण है। स्मरणीय है कि हाल ही श्रीलंका में हुये जेहादी हमले के उत्तर में वहाँ के अल्प संख्यक समुदाय ने स्पष्ट संकल्प व्यक्त किया कि वे श्रीलंका के नागरिक पहले हैं व मुसलमान बाद में। यह एक निर्णायक संकेत है कि अब राजनीतिक दल, सत्ताधारी दल के सुधारों के कार्यक्रम के भागीदार बन कर अपनी रचनात्मक सोच से राष्ट्र संचालन में योग दें। वे याद रखें कि नकारात्मक व मानसिक जकड़न वाली सोच कभी परिवर्तनशील व प्रगतिशील राष्ट्रीय उद्देश्यों के साथ कदमताल नहीं कर सकती है।

सामाजिक निहितार्थ

दुबारा स्पष्ट जनादेश के मात्र राजनीतिक निहितार्थ नहीं है, वरन् व्यापक सामाजिक निहितार्थ भी हैं। देश का विकास प्रत्येक भारतीय चाहता है। सामाजिक सद्भाव व समरसता सभी का उद्देश्य है। भारतीय समाज की रचना पश्चिमी सामाजिक दर्शन व अन्य अन्तरराष्ट्रीय विचारों यथा वामपंथी विचारधारा से निर्धारित होगी अथवा भारत की सांस्कृतिक विरासत व परंपराओं से निर्धारित होगी। 2014 व 2019 के स्पष्ट जनादेश व अधिकांश राज्यों में राजग सरकारों के गठन ने तय कर दिया है। देश राष्ट्रीय गौरव, सांस्कृतिक विरासत व परंपराओं व आकांक्षाओं से संचालित होगा न कि हिन्दू आतंकवाद जैसे दुरभिसंधिपूर्ण नारों व राजनीति से। देश किसी पंथ विशेष, जाति विशेष व वंश विशेष से संचालित नहीं होगा वरन् वास्तविक पंथ निरपेक्ष राजनीति व सर्वानुमति से चलेगा। समाज में मात्र दो ही जातियाँ या वर्ग होंगे एक गरीब व दूसरा गरीबी से मुक्ति दिलाने वाला वर्ग। समयान्तर में यह वर्ग भेद भी समाप्त हो जायेगा तथा संपूर्ण भारत एक सशक्त समाज के रूप में उभरेगा।

प्रशासनिक निहितार्थ

दुबारा स्पष्ट जनादेश वास्तव में जन सामान्य के जीवन में सुधार को फलीभूत करने से मिला है। स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारत का सपना सभी के लिए रोटी कपड़ा और मकान रहा है। आजादी के बाद सभी राजनीतिक दलों ने सपने तो दिखाये परन्तु अमल में नहीं लाये। पूर्ववर्ती सरकारों ने अनेक कार्यक्रम अपनाये परन्तु जन-साधारण लाभान्वित नहीं हो सका। जनसाधारण ने पहली बार अनुभव किया कि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में वर्तमान सरकार ने भारी सफलता प्राप्त की। आवास रसोई गैस, आवागमन, शौचालय, स्वच्छता, स्वास्थ्य (आयुष योजना) पेंशन, किसान सम्मान निधि, गाँध-गाँव व घर-घर बिजली व बिजली आपूर्ति आदि जैसी सुविधायें प्रथम बार सम्पूर्ण देश में बिना किसी भेदभाव के सभी पात्र लाभार्थियों तक पहुँची। यह कल्याणकारी राज्य की दिशा में पहला कदम है, यह रुकेगा नहीं। जनसाधारण ने यह प्रथम बार अनुभव किया है कि सरकार द्वारा दिया गया लाभ प्रत्यक्ष व पूर्णरूपेण लाभार्थी तक पहुँचा है। क्या यह भ्रष्टाचार-कदाचार मुक्त शासन का संकेतक नहीं है, दुबारा स्पष्ट जनादेश की प्राप्ति इस दिशा के प्रयासों को पुष्ट कर रही है।

आर्थिक निहितार्थ

दुबारा स्पष्ट जनादेश के आर्थिक निहितार्थ सर्वाधिक महत्त्व के हैं। वर्तमान सरकार ने 2014 से 2019 के बीच घोटालों, संसाधनों की लूट, पक्षपात, भ्रष्टाचार आदि से घिरी अर्थव्यवस्था को पुनः पटरी पर ही नहीं लाई वरन इन दोषों को दूर कर एक बार पुनः अर्थव्यवस्था को प्रगति पथ पर आरूढ़ किया। आर्थिक सुधारों के क्रम में बड़े नोटों की नोट बंदी, जीएसटी, दिवालिया कानून, मुद्रा योजना, जन-धन योजना, लेन देन व प्रशासन के डिजिटलीकरण जैसे कदमों में अर्थ व्यवस्था का चेहरा बदलने के आर्थिक सुधारों को लागू किया। ये दीर्घगामी सुधार हैं, जिनके परिणाम अब जन साधारण को प्राप्त होंगे। यह सही है कि आज देश के समक्ष कृषि की बदहाली किसानों की परेशानियाँ, गरीबी, बेरोजगारी, व्यापार करने में सुगमता संबंधी परेशानियाँ हैं, परन्तु विपक्ष के अनेक मिथ्या प्रचार के बावजूद मतदाता ने सरकार में पहले से अधिक विश्वास व्यक्त किया है। उनका अनुभव है कि यह सरकार जो कहती है वह करती अवश्य है, किसी प्रकार की अनिश्चितता नहीं है, सरकारी नीतियों में स्थायित्व है, वित्तीय सुदृढ़ता है, भ्रष्टाचार मुक्त ईमानदारी का संरक्षण करने वाला नेतृत्व है। परिणाम स्वाभाविक ही है, कि अब कृषि आय को दोगुना करने का सपना पूरा होगा, उद्योग व व्यवसाय में निवेश बढ़ेगा, उद्योगों व कृषि क्षेत्र का उत्पादन बढ़ेगा, स्वरोजगार की व्यवस्था सुदृढ़ कर, बेरोजगारी की समस्या हल की जायेगी। सरकारी नीतियाँ जन साधारण को लाभान्वित करने वाली होंगी। प्रधानमंत्री ने भारत की प्रगति में मध्यम वर्ग के योगदान को सराहा है व आगे उनको आकांक्षाओं की पूर्ति के दिशा में कदम उठाने का मन्तव्य व्यक्त किया है। इन सभी दिशाओं में कार्य जारी है। विश्वास है कि शीघ्र ही घोषित की जाने वाली सौ दिन की कार्ययोजना में भी इनका समावेश होगा।

संपूर्ण देश ने एकजुट होकर श्री नरेन्द्र मोदी ने सबल, दृढ़ निश्चियी व अविलम्ब समयानुकूल निर्णय लेने की सामर्थ्य व प्रशासनिक क्षमता में विशाल विश्वास व्यक्त किया है। यह यशस्वी भारत के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। नई सरकार के कार्य काल में तीव्र आर्थिक, सामाजिक विकास संभव होगा, यही इस प्रचण्ड जनादेश का स्पष्ट संकेतक हैं। q

(सम्पादक - शैक्षिक मंथन)

अंग्रेजी मीडिया में भले ही राहुल और प्रियंका को विशेष प्रचार मिला हो, पर समाज में एक गंभीर परिवर्तन चल रहा था। अंग्रेजी-भाषी नामी बौद्धिकों, पत्रकारों को पीछे छोड़ते हुए देसी भाषा-भाषी लोगों का प्रभाव बढ़ रहा था। शोभा डे लिखती हैं, 'गत पाँच साल हम वास्तविकता झुठलाते रहे। अपने अहंकार में सोचते रहे कि यह बीत जाएगा, मगर यह क्या चीज है जिसके बीत जाने की हमने आशा की थी? इसका कोई उत्तर नहीं मिलता।' विशिष्ट बौद्धिक वर्ग से परे एक भरा-पूरा विशाल हिंदुस्तान है जो अपने अनुभव से कुछ और सबक निकाल रहा है। उसे मोदी की बातें, उनके काम गलत नहीं लगे। इसलिए उसने अपना मत देकर उस जगह को भर दिया, जिसे विशिष्ट वर्ग अपनी बपौती समझता रहा था।

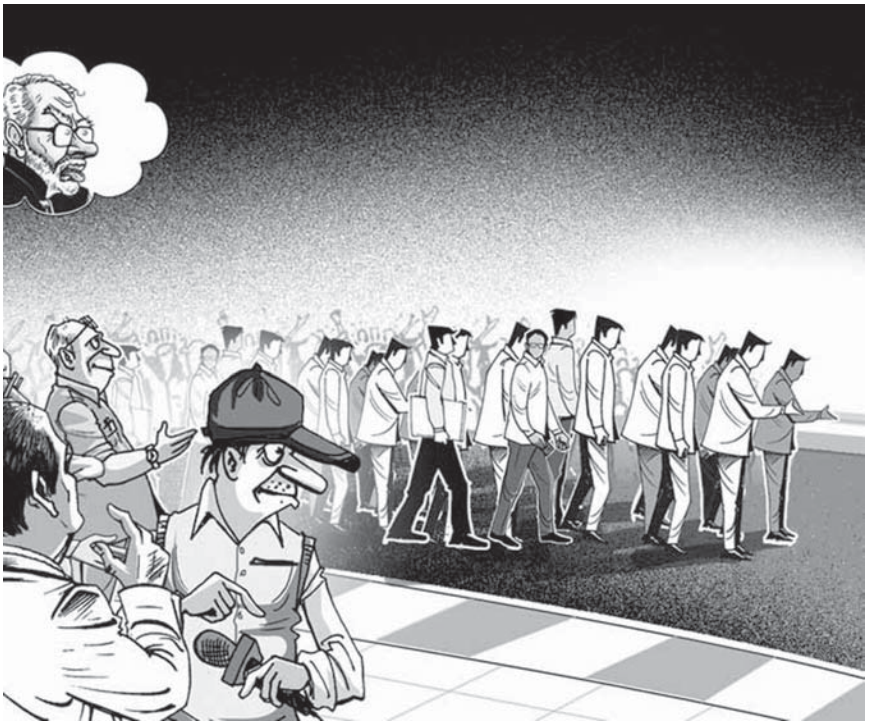

अहंकारी विशिष्ट बौद्धिक वर्ग की पराजय

❑ शंकर शरण

स्वतंत्र भारत में पीढ़ियों से एक विशेषाधिकारी वर्ग केंद्रीय सत्ता का दरबारी, सहयोगी और चहेता रहा है। उसी को कभी लुटियन तो कभी खान-मार्केट 'गिरोह' कहा जता है। सोशल मीडिया में उन्हें और भी नाम दिए जाते हैं। इसी वर्ग की प्रतिनिधि शोभा डे और तवलीन सिंह ने चुनाव नतीजों के बाद कई महत्त्वपूर्ण बातें स्वीकार की हैं। उन्होंने माना कि अब 'इंडिया' वाला राज्यतंत्र अंतिम रूप से 'हिंदुस्तान' के हाथों में जा चुका है। इसका आरंभ मई 2014 में हुआ और मई 2019 में मुकम्मल हो गया। विशेषाधिकारी अंग्रेजीभाषी, अहंकारी बौद्धिक-राजनीतिक वर्ग की खानदानी सत्ता सदा के लिए चली गई। उसका स्थान साधारण पृष्ठभूमि वाले, भारतीय भाषा-भाषी और आम जन-गण से जुड़े लोगों ने ले लिया है। इस विस्थापन में नेता, बुद्धिजीवी और पत्रकार सभी शामिल हैं।

तवलीन सिंह जोर देकर कहती हैं कि यह उनका प्रत्यक्ष आजीवन अनुभव है कि इस सुविधाभोगी विशेषाधिकारी वर्ग का हर चीज पर संपूर्ण नियंत्रण था, 'हम राजनीति, सरकार, व्यापार, विदेश नीति, पुलिस, सेना और मीडिया सब कुछ पर नियंत्रण करते थे। यह इसलिए संभव हुआ कि जबसे अंग्रेज गए तभी से कमोबेश हम सब नेहरू-गाँधी परिवार के दरबारी थे। हम जानते थे कि उन का सोशलिज्म और सेक्युलरिज्म उतना ही झूठा था जितना उनका 'आइडिया ऑफ इंडिया।' तमाम बड़े पदों और मीडिया में केवल अंग्रेजी-प्रवीण लोग आगे बढ़ाए जाते थे। अंग्रेजी कोई भाषा नहीं, बल्कि एक विशेषाधिकारी वर्ग की परिभाषा थी। संसद में भी भारतीय-भाषी किसी तरह बर्दाश्त किए जाते थे और वह भी नाक-भौं सिकोड़ते हुए, मानो वे किसी प्राइवेट क्लब में अनुचित घुस गए हों। इसी वर्ग ने कांग्रेस नेतृत्व को भी खानदानी बनाने का विचार दिया। यह स्वीकारोक्ति स्वतंत्र

भारत की बौद्धिकता का सबसे केंद्रीय सत्य है।

दशकों से हमारे बड़े-बड़े बौद्धिक, सुख-सुविधा एवं विशेषाधिकारों के लोभ में जानबूझ कर झूठी बातें और नारे फैलाते रहे। इसे पहले भी राज थापर, अरुण शौरी, सीताराम गोयल जैसे सत्यनिष्ठ लेखकों ने रेखांकित किया, मगर उनकी बातें दबाई जाती रहीं, पर अब हिंदुस्तान से अंग्रेजी-भाषी, विशेषाधिकारी, मतवादी बौद्धिकता का प्रभाव लुप्त हो रहा है। वर्तमान जनादेश इसका भी संकेत है। वस्तुत: यह एक लंबी प्रक्रिया की परिणति है जिसमें हमारे प्रभावी बुद्धिजीवियों की विश्वसनीयता गिरती चली गई। अयोध्या आंदोलन के बाद से ही बार-बार दिखने लगा कि कई बड़ी राष्ट्रीय समस्याओं, घटनाओं पर नामी संपादकों, लेखकों, प्रोफेसरों, स्टार एंकरों द्वारा भर्त्सना या अनुशंसा के बावजूद जन-साधारण पर उसका प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

इस चुनाव ने यह अंतिम रूप से तब स्थापित कर दिया जब तमाम नामी लोगों की आशाएँ धूल-धूसरित हो गईं। उन्होंने मई 2014 को दुर्घटना भर समझा था, और तबसे अपना रुतबा घटने को अपवाद व्यवधान मानकर इंतजार कर रहे थे। दशकों से सत्ताधारियों तक उन की सीधी पहुँच रहती थी। वस्तुत: 2014 के बाद सबसे बड़ा नुकसान लिबरल बौद्धिकों का ही हुआ। इसीलिए वे लगातार मोदी सरकार पर संकीर्ण टिप्पणियाँ करते रहे। उनकी बातें उन अखबारों और टीवी चैनलों पर ही आती थीं जिनसे आम लोग अधिकाधिक दूर होते गए हैं। आम चुनाव में उन्होंने अनाधिकारी भाजपा को हटाकर पारंपरिक, खानदानी, नामदारों के फिर काबिज होने की कल्पना कर रखी थी। मोदी को हिंदुत्व के भोंड़े नेता, सर्वसत्तावादी, संस्थाओं को खत्म करने वाला आदि चित्रित करके वे आश्वस्त थे कि उन्हें हरा दिया जाएगा। मोदी की तुलना में राहुल गाँधी को भला और उपयुक्त दावेदार दिखाने का प्रयास हुआ।

अंग्रेजी मीडिया में भले ही राहुल और प्रियंका को विशेष प्रचार मिला हो, पर समाज में एक गंभीर परिवर्तन चल रहा था। अंग्रेजी-भाषी नामी बौद्धिकों, पत्रकारों को पीछे छोड़ते हुए देसी भाषा-भाषी लोगों का प्रभाव बढ़ रहा था। शोभा डे लिखती हैं, 'गत पाँच साल हम वास्तविकता झुठलाते रहे। अपने अहंकार में सोचते रहे कि यह बीत जाएगा, मगर यह क्या चीज है जिसके बीत जाने की हमने आशा की थी? इसका कोई उत्तर नहीं मिलता।' विशिष्ट बौद्धिक वर्ग से परे एक भरा-पूरा विशाल हिंदुस्तान है जो अपने अनुभव से कुछ और सबक निकाल रहा है। उसे मोदी की बातें, उनके काम गलत नहीं लगे। इसलिए उसने अपना मत देकर उस जगह को भर दिया, जिसे विशिष्ट वर्ग अपनी बपौती समझता रहा था।

एक असाधारण परिवर्तन हुआ है। वंशवादी सत्ताधारियों समेत पारंपरिक सुविधाभोगी, विशेषाधिकारी बौद्धिक वर्ग इतिहास की चीज बन रहे हैं। ये बौद्धिक वही लोग थे जिन्होंने इंदिरा द्वारा तमाम संवैधानिक संस्थाओं को चौपट करते जाने की कभी आलोचना नहीं की। सुप्रीम कोर्ट जजों को भी सत्ताधारी नेता के प्रति जबावदेह बनाने की कोशिश का उन्होंने विरोध नहीं किया। दरअसल उनके 'आइडिया ऑफ इंडिया' में मुख्यत: अपने विशेषाधिकारों की ही चिंता थी। किसी योग्यता, न्याय और जनगण के अधिकारों का उसमें कोई विशेष ध्यान नहीं था। अब उन्हें लग रहा है कि वे पूरी तरह अप्रासंगिक हो चुके हैं।

चुनाव परिणामों से उन्हें किसी प्रियजन की मृत्यु सा शोक हो रहा है। अभी भी उन घिसे-पिटे सेक्युलर, वामपंथी मुहावरों में लकीर पीट रहे हैं, जो सच ढकने और झूठ सजाने के काम आते थे। उदाहरण के लिए प्रतापभानु मेहता आज देश को 'घोर संकट-ग्रस्त' मान रहे हैं, जहाँ अल्पसंख्यकों को अपदस्थ करके स्थायी रूप से 'मेजोरिटेरियन' राज्य बनाया जा रहा है। यह चुनाव 'भय और घृणा की राजनीति' की जीत है। धार्मिक समेत देश की सारी संस्थाएँ एक ही व्यक्ति के गिर्द संकेंद्रित हो गई हैं। यद्यपि उन्होंने यह भी माना कि समाज में चुपचाप कोई गहरी उथल-पुथल हो रही है, जो चुनावी राजनीति से परे हैं।

देश में प्रचलित राजनीतिक मुहावरे बदल रहे हैं। विचार-विमर्श में 'लिबरल', 'सेक्युलर' आदि बुरे शब्दों में बदल गए हैं, जिनका प्रयोग अब नहीं हो रहा। विरोधी दल भी अपने को लिबरल, सेक्युलर कहलाना नहीं चाहते। इन शब्दों का प्रयोग छोड़ देना मेहता और उनके जैसे अन्य लोगों के लिए मानो बेईमानी है, 'जिन्हें फिर से प्रचलित कराने में लंबी बौद्धिक मेहनत करनी पड़ेगी।' मेहता सरीखे लोग भूलते हैं कि उन विदेशी मुहावरों का देश की जमीनी सच्चाइयों से कभी संबंध नहीं रहा। मुख्यत: अंग्रेजी भाषा के अबूझ टोने-टोटके और सत्ता बल से उन्हें जैसे-तैसे विश्वसनीय बनाए रखा गया था। अब जब इंडिया के बदले हिंदुस्तान अपनी जगह ले रहा है तब ये मुहावरे और भी बेकार हो चुके हैं।

अच्छी बात यह है कि जाने-माने बड़े बौद्धिकों में से कुछ अपने पुराने, बने-बनाए विश्वासों, नारों पर पुनर्विचार कर रहे हैं। क्या वे अपने ही नारों से भ्रमित हो गए थे या सत्ता-सुविधा की आदत ने उन्हें मानसिक रूप से बेईमान बना दिया था? इसका उत्तर जो भी मिले, इससे जुड़े सभी प्रश्नों का खुलकर सामना करना आज की जरूरत है। तभी न केवल हमारी राजनीति, बल्कि शिक्षा को भी मतवादी कैद से मुक्त कर भारतीय बौद्धिकता को स्वतंत्र और मौलिक बनाने की दिशा में बढ़ा जा सकता है। ❑

(साभार- दैनिक जागरण)

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है- 'योग: कर्मसु कौशलम्' जहाँ आपके कर्मों में कुशलता उत्पन्न होने लगे वही योग है। और उसमें यह बात निहित ही होती है कि उस समय व्यक्ति स्वार्थ बुद्धि से दूर हटकर अनासक्त भाव से कर्म कर रहा होता है। यह एक मनोवैज्ञनिक प्रक्रिया भी है जिसमें व्यक्ति खो जाता है। इसलिये अपने कर्मयोग के आधार पर समाज और विश्व को मनुष्य ने अद्भुत् योगदान दिये हैं। अत: उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम चरित्र एवं व्यक्तित्व विकास के लिये तथा विद्यार्थियों की एकाग्रता शक्ति को उत्कृष्ट रूप से बढ़ाने के लिये योग शिक्षा को शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

योग शिक्षा : सार्थक शिक्षा

❑ **डॉ. ओम प्रकाश पारीक**

ऋषि आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु था। पिता ने विद्याध्ययन हेतु उसे गुरु के पास भेजा, वह 12 वर्ष तक संपूर्ण वेदों का अध्ययन कर अपने को उत्कृष्ट विद्वान्, विद्याओं का व्याख्याता समझता हुआ विनम्रता से रहित होकर पिता के घर लौटा। पिता आरुणि ने उसकी यह दशा देखकर कहा कि हे पुत्र श्वेतकेतु! क्या तुमने अपने गुरु से यह पढ़ लिया- जिससे न जाना हुआ जाना हुआ हो जाता है, न सुना हुआ सुना हुआ हो जाता है तथा न विचारा हुआ विचारा हुआ हो जाता है। पुत्र ने कहा यह तो मुझे नहीं पढ़ाया गया। पिता ने कहा हे पुत्र अभी तुम्हारा अध्ययन अधूरा है वह तुम्हें पूर्ण करवाना है। वास्तव में श्वेतकेतु को सत्य का ज्ञान नहीं हुआ था, केवल पल्लवग्राही (ऊपर-ऊपर का) ज्ञान होने से बिना विद्या के उसमें विनम्रता का भी अभाव था। (विद्या ददाति विनयम्) ऐसा सार्थक विद्याध्ययन जो कि लक्ष्य प्राप्ति तक ले जाता है उसके लिये विद्यार्थी में उत्कृष्ट एकाग्रता आवश्यक है। एकाग्रता के बिना, वास्तविक ज्ञान न होने से श्वेतकेतु का अध्ययन अधूरा था। इसलिये विद्यार्थियों में उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्रदान कर अध्ययन में एकाग्रता विकसित करने एवं संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास हेतु योग शिक्षा अत्यन्त उपादेय है।

पाणिनि ने योग शब्द की व्युत्पत्ति 'युजिर योगे, युज् समाद्यौ, युज् संयमने धातु से मानी है, इसका अर्थ है- जोड़ना, मिलाना, जीवात्मा और परमात्मा की समता करना।' इसके लिए हमारा मन स्थिर होना चाहिये। मन अचेतन होता है पर आत्मा चेतन होती है। आत्मा के साथ संयोग से मन चेतन की तरह हो जाता है जिसे चित्त कहते हैं। चित्त के साथ विभिन्न स्मृतियाँ जुड़ी होती हैं, जो आती और जाती रहती हैं। मन जिन विषयों के बारे में चिन्तन करता है वे चित्तवृत्तियाँ कहलाती हैं। अतृप्त और अनन्त वासनायें, इच्छायें मन को अशान्त और मलिन बना देती हैं। इसलिये एकाग्रता प्राप्त करने हेतु मन को स्थिर करना आवश्यक है। अन्य सभी स्थानों से मन की वृत्ति को रोककर एक स्थान पर एकाग्र कर देने से न केवल मन शांत हो जाता है अपितु इसका अभ्यास करने से किसी एक कार्य में मन की एकाग्रता बढ़कर निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है और लक्ष्य की प्राप्ति होती है। महर्षि पतञ्जलि के द्वारा दी गयी योग की परिभाषा इसको व्यक्त करती है- **'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'** अर्थात् चित्त को अस्थिर करने वाली विभिन्न वृत्तियों को रोक देना ही योग है। चित्तवृत्तियों को रोक देने से व्यक्ति

परं ध्येय के साथ पूर्णरूप से जुड़ जाता है और उसका योग सिद्ध होता है। जहाँ-जहाँ व्यक्ति में किसी कार्य के प्रति तन्मयीभाव रहता है उसमें कहीं न कहीं कुछ अंश में योग ही हो रहा होता है। इसलिये गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है- **'योगः कर्मसु कौशलम्'** जहाँ आपके कर्मों में कुशलता उत्पन्न होने लगे वही योग है। और उसमें यह बात निहित ही होती है कि उस समय व्यक्ति स्वार्थ बुद्धि से दूर हटकर अनासक्त भाव से कर्म कर रहा होता है। यह एक मनोवैज्ञनिक प्रक्रिया भी है जिसमें व्यक्ति खो जाता है। इसलिये अपने कर्मयोग के आधार पर समाज और विश्व को मनुष्य ने अद्भुत् योगदान दिये हैं। अतः उत्तम स्वास्थ्य, उत्तम चरित्र एवं व्यक्तित्व विकास के लिये तथा विद्यार्थियों की एकाग्रता शक्ति को उत्कृष्ट रूप से बढ़ाने के लिये योग शिक्षा को शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

आज योग शब्द बहुत प्रसिद्ध हो गया है पर सामान्य जनमानस में केवल आसन एवं प्राणायाम तक ही उसका अर्थ समझा जाता है जो कि ठीक नहीं है। जिन चित्तवृत्तियों को रोकने की बात योग के अन्तर्गत महर्षि पतञ्जलि ने बताई है वह शरीर की बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धता युक्त आहार-विहार, नियमित दिनचर्या युक्त व्यायाम (आसन) आदि के आचरण पर निर्भर करती है। इसी प्रकार से ही योगमय जीवन का लाभ व्यक्ति को मिल पाता है। अतः महर्षि पतञ्जलि ने योग के लिये आठ अंगों की प्रक्रिया बताई है- जिसे अष्टांग योग कहते हैं-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यान- समाधयोः अष्टावंगानि (योग सूत्र/ पतञ्जलि) अर्थात् यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार धारणा-ध्यान-समाधि योग के आठ अंग हैं। इनमें पहले पाँच बहिरंग योग कहलाते हैं जो सांसारिक बाह्य परिस्थितियों से मनुष्य के व्यवहार को संयत कर सुख प्रदान करते हैं। किन्तु आन्तरिक तीन (धारणा, ध्यान, समाधि) अन्तरंग योग हैं जो कि व्यक्ति की सुषुप्त प्रतिभाओं को जागृत कर जीवन के यथार्थ का बोध करवाकर आत्म साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं। संपूर्ण योग प्रक्रिया में व्यक्ति को स्वयं की बाह्य एवं आन्तरिक रूप से शुद्धि करनी होती है उसके बिना एकाग्रता उत्पन्न नहीं होती न ही योग संभव होता। इसलिये भगवान ने गीता में कहा है-

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु। युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

(गीता)

अर्थात् जो व्यक्ति उचित व नियमित आहार-विहार करता है तथा यथायोग्य उचित कर्मों का आचरण करता है, उचित रूप से सोने व जागने द्वारा उचित दिनचर्या करता है, दुःखों का नाश करने वाला यह योग उसी का सिद्ध होता है। अतः योग के आचरण के लिये व्यक्ति की उचित व नियमित दिनचर्या होनी चाहिये। इसके लिये यम-नियम का पालन करना महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम कहलाते हैं। मनसा-वाचा-कर्मणा किसी को दुःख न पहुँचाना अहिंसा है। प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द प्रमाण से जिन बातों का निश्चय हो गया है उनको श्रोता को उद्वेग न पहुँचाते हुये, प्रिय लगने वाले परिणाम में हितकारी, कपट रहित, भ्रम रहित, यथार्थ वचन बोलना सत्य है। गलत रीति से दूसरे के द्रव्य को ग्रहण न करना, सांसारिक पदार्थों का अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्दता से भोग न करना अस्तेय है। उपस्थ इन्द्रिय का संयम करते हुये अच्छा उत्तम आहार-विहार, युक्त आचार-विचार एवं निद्रा आदि ब्रह्मचर्य कहलाता है। संसार के भौतिक पदार्थों के संग्रह, संवर्धन, रक्षण व प्रचार में आसक्त न होना अपरिग्रह है। यमों के पालन से मनुष्य में सद्वृत्तियाँ विकसित होती हैं, उत्तम चरित्र का विकास होता है जिससे मनुष्य सात्विक बनता है जो कि योग के लिये आवश्यक है। इसी प्रकार पाँच प्रकार के नियमों का पालन करना भी महत्त्वपूर्ण है। शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय -ईश्वर प्रणिधान पाँच नियम कहलाते हैं। शरीर की बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धता शौच कहलाती है। बाह्य शुद्धता से शरीर स्वस्थ रहता है। आन्तरिक शुद्धि में बुद्धि की शुद्धि, सौमनस्यता, चित्त और मन की स्वच्छता आती है। अपने मन से ईर्ष्या, घृणा, अभिमान आदि मलों को दूर करना, विवेक से अज्ञान को दूर करते हुये, मन को स्वच्छ रखना आन्तरिक शुद्धि है। शुद्ध शरीर व मन योग की अग्रिम अवस्थाओं की पात्रता बनते हैं। अपने को जो भी मिले उसमें प्रारब्ध को कारण समझकर संतुष्ट रहना तथा तृष्णा से दूर रहना संतोष है। सर्दी-गर्मी, दुःख-सुख द्वन्द्वों को सहन करते हुये संयम व नियम से रहना, मान्य व पूज्यों का सत्कार करते हुये, शरीर मन व वाणी की दुर्बलताओं को नष्ट करना तप है। शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन, श्रवण, निदिध्यासन (निरन्तर चिन्तन) स्वाध्याय है। सभी कर्मों और फलों को ईश्वर के अर्पण करना तथा निष्काम प्राप्ति ही ईश्वर प्रणिधान है।

यम व नियमों का पालन करते हुये योग का तीसरा अंग आसन है। जिस प्रकार से साधक (योग करने वाला) सुखपूर्वक स्थिरता से बैठ सके उसे आसन कहते हैं। पद्मासन, सुखासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन इत्यादि बहुत प्रकार के आसन हैं। आसनों से सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है एवं आरोग्य और बल प्राप्त होता है। किसी आसन में स्थिरता से सुखपूर्वक बैठकर प्राणायाम करना योग का चतुर्थ अंग है। इसमें शास्त्र विधि से श्वास-प्रश्वास को रोकना होता है। नासिका से वायु अन्दर खींचना श्वास तथा बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है। प्राणायाम की परिभाषा योग सूत्र में निम्न प्रकार दी है -

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वास-
योर्गति विच्छेदः प्राणायामः।

(योग सूत्र/ पतञ्जलि)

इसके तीन भेद होते हैं पूरक-रेचक तथा कुम्भक। पूरक में-दाहिने नथुने को

दाहिने अंगूठे से बंद कर बाँये नथुने से प्राणवायु धीरे-धीरे दस सैकेण्ड तक भरना, फिर बाँये नथुने को दाँये हाथ की कनिष्ठा व अनामिका अंगुली से बन्द करना पूरक है। कुम्भक में- पूरक होने के पश्चात् दोनों नथुने बंद कर लिये जाते हैं इसी अवस्था में बीस सैकेण्ड तक प्राणवायु को फेफड़ों में बन्द कर रोकना कुम्भक है। रेचक में दाँये नथुने से अंगूठे को धीरे-धीरे उठाकर श्वास को तीस सैकेण्ड तक धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक प्राणायाम है। इस आधे प्राणायाम के बाद पुनः दाँये से श्वास भरना, फेंफड़ों में रोकना व बाँये नथुने से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालना पूरा प्राणायाम होता है। इसमें परमात्मा के पवित्राक्षर मंत्र का ध्यान करते हुये भी प्राणायाम किया जा सकता है। प्राणायाम सिद्ध होने पर विवेक ज्ञान पर स्थित अज्ञान आवरण क्षीण होता है, मन स्थिर बनता है, ज्ञान व प्रकाश प्रकट होता है तथा अग्रिम योगांग प्रत्याहार की योग्यता प्राप्त होती है। प्रत्याहार में इन्द्रियों को अपने विषयों से दूर हटाया जाता है अर्थात् इसमें चित्त विषयों में दौड़ता नहीं और अन्तर्मुखी हो जाता है मन में एकाग्रता बढ़ जाती है इस समय चित्त को एक वृत्ति से एक स्थान पर बांधना धारणा कहलाती है। वह स्थान नाभि, हृदय, भृकुटि आदि तथा स्थूल, सूक्ष्म, बाह्य, आभ्यान्तर कुछ भी हो सकता है। इसे ध्येय कहते हैं ध्येय से चित्त को बांधना ही धारणा कहलाती है। इससे ध्यान की योग्यता उत्पन्न होती है। जब इस ध्येय में चित्त वृत्ति अनवरत रूप से लगी रहे, तेल की धार की तरह जो बीच में टूटती नहीं उसी प्रकार वह वृत्ति बीच में न टूटे, उसके बीच दूसरी वृत्ति न आये तब उसको ध्यान कहते हैं। इस ध्यानावस्था में ही जब ध्याता अपने को भूलकर ध्येयाकार हो जाये, उसमें तन्मय हो जाये, ध्येय से अलग स्वयं का ज्ञान ही न रहे वह समाधि है। समाधि में ध्याता-ध्यान और ध्येय तीनों एकाकार हो जाते हैं। यह एकाग्रता की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है। इस प्रकार के अष्टांग योग के आचरण से शरीर-मन-बुद्धि-आत्मा सभी अपनी उत्तम अवस्था में रहते हैं। व्यक्ति एक सार्थक जीवन जीता है कोई भी लक्ष्य उससे दूर नहीं होता।

योग शिक्षा से विद्यार्थियों के शारीरिक स्वास्थ्य के साथ अन्तःकरण शुद्ध बनता है वस्तुतः अन्तःकरण की शुद्धता प्रत्येक क्षेत्र में विकास के लिये आवश्यक है यदि मन दूषित होता है तो बुद्धि भी दूषित हो जाती है इस कारण जो भी निर्णय लिया जाता है वह दोषपूर्ण होता है- धी, धृति और स्मृति तीनों का समन्वय बुद्धि कहलाता है इसके दोष से जो कायिक, मानसिक और वाचिक कर्म किये जाते हैं वे सब अशुभ होते हैं युक्त नहीं होते जिसके कारण विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिसे प्रज्ञापराध से उत्पन्न रोग कहते हैं। मन को अष्टांग योग के आचरण से शुद्ध बनाया जा सकता है। मन शुद्ध होने पर बुद्धि और चित्त भी शुद्ध होते हैं और प्रज्ञापराध समाप्त होते हैं। इतना ही नहीं योग शास्त्र से मन में आने वाले राग, द्वेष, ईर्ष्या, असूया, अमर्ष आदि कालुष्य से मन को निर्मल करने के उपाय भी बताये गये हैं जैसे सुखी व्यक्ति को देखकर मैत्री का भाव अपना कर ईर्ष्या दुर्गुण, दुखी जनों पर करुणा की भावना से घृणा दुर्गुण, सदाचारियों के लिये हर्ष (मुदित) की भावना होने से असूया दुर्गुण, पापी, दुष्ट व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा (उदासीनता) की भावना अपनाकर द्वेष, अमर्ष (सहन न करना) तथा घृणा के दोष समाप्त होते हैं इस प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, भावनाओं को अपनाकर मन को निर्मल करने से अपने कर्तव्य कर्म में एकाग्रता बढ़ती है व लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

आज शैक्षिक संस्थानों में प्रत्येक स्तर पर औपचारिक योग शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक है। इसके लिये शिक्षक भी यौगिक ज्ञान व क्रियाओं में सिद्ध हों जो कि स्तरानुसार औचित्यपूर्ण योग शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान कर सकें। योग शिक्षा हेतु प्राथमिक कक्षाओं के स्तर पर पाठ्यक्रम बनाकर, अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह जैसे यमों की शिक्षा से सद्गुणों के संस्कार आरोपण किये जा सकते हैं। इसके साथ नियमों में बाह्य व शारीरिक शुद्धि का महत्त्व समझाकर आचरण में ग्राह्य करवाया जाना चाहिये। आगे माध्यमिक कक्षाओं में यम-नियम-आसन-प्राणायाम का समुचित, सैद्धान्तिक व व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करते हुये शरीर व मन को शुद्ध बनाये रखने की विधियों को सिखाकर एकाग्रता बढ़ाने का अभ्यास करवाया जाना अपेक्षित है। महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में जहाँ एक ओर योग विषय की वैकल्पिक रूप से चयन की व्यवस्था हो वहीं सामान्य रूप से शारीरिक शिक्षा विभाग के साथ योग शिक्षा को जोड़कर कुशल शिक्षकों द्वारा सभी छात्रों को योग शिक्षा दी जानी चाहिये। इस स्तर पर पाठ्यक्रम में चारित्रिक विकास हेतु यम व नियमों का ज्ञान देना, शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य उत्तम बनाये रखने के लिये विभिन्न आसनों व प्राणायाम का अभ्यास करवाना, मन को शांत व स्थिर रखने तथा एकाग्रता के विकास के लिये ध्यान विधि में छात्रों को पारंगत करने की व्यवस्था होनी चाहिये। योग को वैकल्पिक विषय के रूप में चयन करने वाले कुशल विद्यार्थियों को विभिन्न यौगिक क्रियाओं में दक्ष बनाकर भविष्य के योग शिक्षक के रूप में प्रेरित किया जा सकता है।

इस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में योग शिक्षा को सम्मिलित करने से विद्यार्थी शारीरिक व मानसिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ रहते हुये, विभिन्न दुर्गुणों से अपने को दूर रखकर उत्तम चारित्रिक विकास प्राप्त करेंगे, स्थिर मन-मस्तिष्क से विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास कर राष्ट्र के अभ्युदय में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देंगे साथ ही अपने रुचि के अध्ययन विषय में उत्कृष्ट एकाग्रता द्वारा अपेक्षित लक्ष्य प्राप्त करेंगे। विद्यार्थी अपने जीवन में योग को अपनाकर आत्मसाक्षात्कार द्वारा अपना जीवन भी सार्थक कर सकेंगे। ❑

(सह-आचार्य, संस्कृत,
राज. महाविद्यालय, आहोर, जालोर)

वर्तमान में विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार संशोधित किया जाये कि मनुष्य को सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध करने के साथ-साथ प्रकृति का संरक्षण भी होता रहे। यह जरूरी है कि राष्ट्रीय योजनायें बनाते समय पर्यावरणीय वास्तविकताओं को ध्यान में रखा जाये। पर्यावरण संरक्षण हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में पेड़ों के कटने की गंभीर स्थिति की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए साथ ही बंजर क्षेत्रों में पेड़ उगाये जायें, जिससे भूमि का कटाव रुक सके व मिट्टी की उर्वरता बची रहे। कृषि क्षेत्र में अधिक से अधिक पेड़ों को लगाना चाहिये।

जैव विविधता और पर्यावरण संरक्षण

❑ **रामचन्द्र स्वामी**

पर्यावरण जैव मण्डल का आधार है, लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद से विकास की जो तीव्र प्रक्रिया अपनाई गयी है उसमें पर्यावरण के आधारभूत नियमों की अवहेलना की गयी। जिसका परिणाम पारिस्थितिक असंतुलन एवं पर्यावरणीय निम्नीकरण के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। आज विश्व के विकसित देश हो अथवा विकासशील देश कोई भी पर्यावरण प्रदूषण के कारण उत्पन्न गंभीर समस्या से अछूता नहीं है।

वायुमण्डल में ग्रीन हाऊस गैसों की सान्द्रता में वृद्धि होने से वैश्विक तपन में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप जलवायु में परिवर्तन आया है। जलवायु परिवर्तन का पर्यावरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इससे तटों का अपरदन होता है तटवर्ती इलाकों में तूफानों से अधिक क्षति पहुँचती है। भूमिजल में समुद्री जल के प्रवेश से पेयजल की समस्या उत्पन्न हो सकती है। हाल ही में हुई कुछ प्रमुख घटनाएँ जैसे टॉरनेडो, हरिकेन, चक्रवात, सुनामी अंधड़ तथा दावाग्नियाँ आदि जलवायु परिवर्तन के ही प्रमुख कारण है। कृषि क्षेत्रों में बदलाव, मौसम में बदलाव, ग्लेशियरों का पिघलना समुद्री जल स्तर का बढ़ना, कुछ जीव प्रजातियों का लुप्त होना, बाढ़ एवं सूखे की बारंबारता में वृद्धि होना आदि अनेक कारण पर्यावरण प्रदूषण के ही संकेत हैं।

इन सभी खतरों से बचने के लिए वैकल्पिक व सक्षम फसलों को उगाना होगा ताकि जलवायु परिवर्तन से कृषि चक्र पर कम प्रभाव पड़े। वायुमण्डल में कार्बनडाई आक्साइड को कम करने के लिए हमें ऊर्जा के रूप में ईंधन, कोयला, पेट्रोल, डीजल, बिजली आदि की बचत करनी होगी तथा जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता को कम करना होगा। सरकार द्वारा वैकल्पिक संसाधनों के विकसित करने के साथ-साथ सामान्य जन को भी अपनी वर्तमान सुख-सुविधाओं में कटौती करनी होगी।

आज यह स्पष्ट हो चुका है कि पर्यावरण संरक्षण हेतु जनमानस को अपनी मानसिकता को

बदलना होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विकास के हर एक कार्यक्रम के दौरान पर्यावरण के स्त्रोतों और प्रकृति पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों का अन्तर हर मनुष्य पर पड़ता है चाहे वह आम आदमी हो या कोई विशेष व्यक्ति। वर्तमान में विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार संशोधित किया जाये कि मनुष्य को सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध करने के साथ-साथ प्रकृति का संरक्षण भी होता रहे। यह जरूरी है कि राष्ट्रीय योजनायें बनाते समय पर्यावरणीय वास्तविकताओं को ध्यान में रखा जाये। पर्यावरण संरक्षण हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में पेड़ों के कटने की गंभीर स्थिति की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए साथ ही बंजर क्षेत्रों में पेड़ उगाये जायें, जिससे भूमि का कटाव रुक सके व मिट्टी की उर्वरता बची रहे। कृषि क्षेत्र में अधिक से अधिक पेड़ों को लगाना चाहिये।

शिक्षा के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित शिक्षण सामग्री का समावेश करना चाहिये। शिक्षण संस्थाओं में बच्चों को प्रकृति के बारे में विस्तार से बताना चाहिये, मौसम परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन, ग्रीन हाऊस व वन सम्पदा के बारे में जानकारी देते हुए आसपास की वनस्पतियों, पशुओं तथा प्राकृतिक घटनाओं-वर्षा, आँधी, भूकम्प, बाढ़ आदि से भी परिचित कराना चाहिये।

वर्तमान में शहरीकरण के कारण बच्चों को प्रकृति से वास्तविक साक्षात्कार नहीं हो पाता है वे कृत्रिम वातावरण में पलते हैं अधिकतर बच्चों को आकाश, सूर्य, रात, तारे, वर्षा आदि से अवगत होने का अवसर ही नहीं मिल पाता। अतः ऐसे में बच्चों व सभी नागरिकों के लिए पर्यावरण बोध, पर्यावरण चेतना एवं पर्यावरण शिक्षा आवश्यक है। जिस गति से पर्यावरण का क्षरण हो रहा है, उसको देखते हुए हर नागरिक का कर्तव्य बनता है कि वह पर्यावरण के पुनरुद्धार में अपना सहयोग दे, क्योंकि पर्यावरण वर्तमान पीढ़ी के हाथों भावी पीढ़ियों की एक ऐसी अनमोल धरोहर है, ताकि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक सुन्दर, स्वच्छ पर्यावरण सौंप सकें।

आज प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को कम से कम करने के साथ पर्यावरण को संरक्षित करने की योजना यानी सतत् विकास की आवश्यकता है पर्यावरण अनुकूल जीवनशैली अपना कर पृथ्वी को बचाया जा सकता है। इसके लिए हर कदम पर उर्जा की बचत कर और भूमि एवं जंगलों का संरक्षण करके पर्यावरण के अनुकूल माहौल बना सकते हैं। पूरी दुनिया को वृक्षारोपण द्वारा पुनः हरा-भरा बनाना होगा और जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कमी लानी होगी। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वरीय ऊर्जा जैसे प्रदूषण मुक्त ऊर्जा स्त्रोतों का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करना होगा भारत जैसे विकासशील देश में मनरेगा कार्यक्रम के तहत कृषि क्षेत्रों में मेड़ बंदी पर अधिक से अधिक वृक्षारोपण करके तथा खेतों में वर्षा जल संग्रहण हेतु कुंड व बावड़ी आदि बनाकर भी पर्यावरण संरक्षण में बखूबी भागीदारी निभाई जा सकती है। 'स्वच्छ भारत मिशन' कार्यक्रम की प्रेरणा व संकल्प देश के प्रत्येक नागरिक को लेना चाहिये। जिससे स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत का कार्यक्रम पूर्ण रूप से देश में सफल हो सके। और देश की स्वच्छता के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी आम नागरिक अपनी भूमिका निभा कर भावी पीढ़ी के लिये स्वच्छ व शुद्ध पर्यावरण व स्वस्थ भारत की मिसाल कायम कर सकें।

हमें जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम करने वाली प्रौद्योगिकी को अपनाने व इस दिशा में नई तकनीकी के विकास को प्रोत्साहित करना होगा। इस प्रकार सभी की भागीदारी द्वारा जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटा जा सकता है और पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। ❑

(अध्यापक, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, नत्थूसर गेट, पुराना डाईट भवन, बीकानेर)

गाँधी के सपनों के भारत की वर्तमान स्थिति

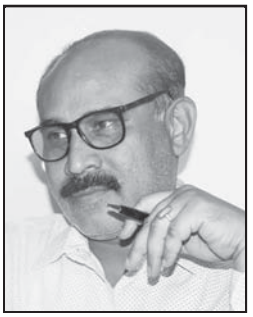

कोई भी राजनीतिक व्यवस्था भारत को तब तक मजबूत नहीं बना सकती जब तक गाँव की मूलभूत समस्याओं को नहीं सुलझा लिया जाता। गाँव को अगर शहर बनाने की होड़ होगी तो भारत की आत्मा कुंठित होगी। भारतीय गणराज्य महज भौतिक बुनावटों से बना गाँव नहीं था, उसमें एक आत्मा का निरंतर बहाव था, जो इंसानियत को जिन्दा रखे हुए थी, उसकी शक्ति आध्यात्मिक बल पर चलती थी, वही गाँधी के सपनों का भारत था, जो पूरी तरह से तार-तार हो चुका है और जिसकी एक झलक पाने के लिए तथाकथित आधुनिक चोखी ढ़ाणी जाकर अपनी ललक को पूरा कर तुष्ट हो रहे हैं।

❑ प्रो. सतीश कुमार

गाँधी जी ने कहा था अगर गाँव कमजोर होंगे तो भारत कभी भी मजबूत नहीं बन सकता, क्योंकि भारत की आत्मा गाँव में बसती है शहरों में नहीं। 7 लाख गाँव भारत की धुरी है। महज हम जैसे लोग जो यहाँ पर इकट्ठा हैं, वो शहरों में विचरने वाले लोग हैं, उनके बूते देश को नहीं पहचाना जा सकता। महज चंद शहर से देश की पहचान नहीं बनती, लेकिन आजादी के बाद गाँव की शक्ल बदलती गयी, गाँधी के स्वप्न टूटते चले गए, गाँधी के जीवन में ही गाँवों का बिखरना शुरू हो गया था, जिसका दर्द गाँधी को था। गाँधी ने गाँव को गणराज्य कहा। अर्थात् ऐसी इकाई जो प्रशासनिक रूप से पूरी तरह से स्वतंत्र हो, किसी के मोहताज नहीं। कार्यपालिका, विधायिका और न्यापालिका की सयुंक्त व्यवस्था ग्राम पंचायत के द्वारा निर्देशित हो। शहरी ढाँचे से उसका कोई लेना देना नहीं हो और न ही आर्थिक संसाधन के लिए किसी बाहरी संस्था पर आश्रित हो। गाँव अपनी आर्थिक जरूरतों की पूर्ति खुद करेगा, आर्थिक संसाधन के शेष हिस्से को गरीब तबकों में बाँट दिया जाएगा। जरूरत पड़ी तो पड़ोसी गरीब गाँवों के बीच में संसाधनों की पूर्ति की जाएगी। यह ढाँचा गाँधी के आदर्श गाँव का था, जो नए भारत का निर्माण करेगा। इसमें गरीबी और अमीरी के बीच कोई द्वन्द्व नहीं होगा, क्योंकि किसी को अकूत सम्पति बटोरने का मौका ही नहीं मिलेगा। गाँव में बेरोजगारी की आहट भी नहीं सुनाई देगी, सभी के पास जीविकोपार्जन के लिए साधन और काम होगा।

लेकिन हुआ गाँधी के सोच के विपरीत। गाँव को साधन और शहर को सुविधा भोगी बना दिया गया। ऐसा मान लिया गया कि शहर में रहने वालों को सुविधा पहुँचने के लिए ही गाँवों का निर्माण हुआ है, उनकी पहचान और अस्तित्त्व इसी बात पर है कि खान-पान और मकान बनाने तक की जरूरत गाँव को करनी है। बाद में चलकर शहर के हर घरों में काम करने वाली दाई और घरेलू कर्मी भी गाँव से बुलाये जाने लगे। गाँधी ने 1921 में लिखते हुए कहा था कि 'लंदन भारत को लूटता है और भारत के शहर गाँव वालों को लूटते हैं, जब तक यह लूट का सिलसिला बंद नहीं होगा, भारत कभी भी सम्पन्न नहीं बन पाएगा।' उन्होंने कांग्रेस के हर सदस्य को यह हिदायत दी थी कि आप अपने गाँव में जाकर व्यवस्था बनाने की

कवायद पूरा करें, लेकिन कांग्रेस के बड़े नेता गाँव की ओर उन्मुख नहीं हुए, उनका बसेरा शहर ही बना रहा। गाँधी ने कहा था कि 'गत 20 वर्षों में जितना भारत का भ्रमण किया है, उतना किसी भी कांग्रेसी ने नहीं किया होगा, इस भ्रमण के जरिये जो मुझे अनुभव हुआ उसी के दम पर मैं भारत को गाँवों का देश मानता हूँ।

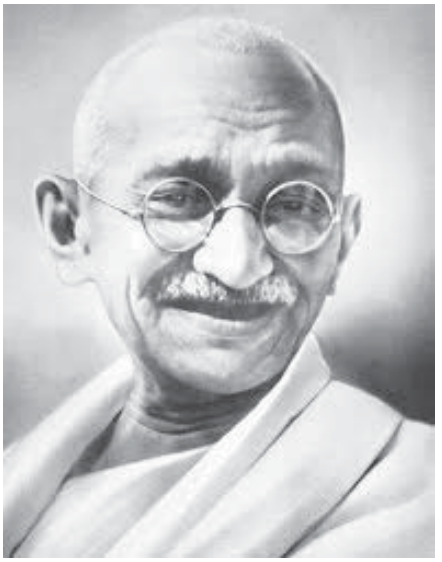

गाँधी के सपनों का भारत कैसे टूटा, किसने तोड़ा, उससे पहले इस बात की व्याख्या जरूरी है कि गाँधी ने भारत को एक गणराज्य के रूप में कैसे और किस रूप में देखा? गाँधी ने गाँवों के ढाँचे के निर्माण के लिए आर्थिक सोच को पहले महत्त्व दिया। गाँव में खेती के लिए सबके पास जमीन होगी, कोई भी भूमिहीन किसान नहीं होगा। गाँधी जमींदारी व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। खेती के लिए कीटनाशक दवाओं का प्रयोग वर्जित होगा, पीने के पानी की पर्याप्त सुविधा होगी। तालाब और पानी का संचयन गाँव के रिहायशी इलाकों से दूर होगा, जिससे पानी जनित बीमारियों से बचा जा सके। लोगों की जरूरत के अनुरूप पैदावार होगी, जिससे हर किसी का पेट भर सके, कोई भूखा नहीं सो सके। केवल कृषि से गाँव कि आर्थिक व्यवस्था नहीं चल पाएगी, इसलिए ग्रामीण उद्योग धंधे लगाने जरूरी हैं। यह उद्योग खादी, हथकरघा और सिल्क बनाने को होंगे। जो लोग खेती के कामों में नहीं हैं, वो लोग उद्योग में अपना समय देंगे। चूंकि इन ग्रमीण उद्योगों से सम्पति का निर्माण बड़े पैमाने पर नहीं होगा, इसलिए गरीब और अमीर के बीच कोई खाई नहीं बनेगी।

आर्थिक व्यवस्था के बाद गाँधी गाँव की स्वच्छता की बात करते हैं। गाँव की सफाई की जिम्मेवारी गाँव के लोगों की होगी। गाँव का हर नाला ढका होगा, एक तिनका भी बाहर दिखाई नहीं देगा। यह व्यवस्था सेवाग्राम के द्वारा तय किया जाएगा, जिसमें हर तबके के लोगों की शिरकत होगी। उसके बाद गाँधी शिक्षा व्यवस्था की बात करते हैं। हर गाँव में एक पाठशाला होगी, कोई भी महिला या पुरुष अशिक्षित नहीं होगा। शिक्षा, लोगों के मानसिक स्तर को हमेशा मजबूत और सुदीर्घ रखेगी। सुरक्षा की व्यवस्था भी गाँव के द्वारा ही तय की जाएगी। इसके लिए कोई बाहरी सहयता की जरूरत नहीं होगी। चूंकि सामाजिक समरसता गाँव में होगी, हर कोई हर काम करने के लिए बाध्य होगा इसलिए जातीय विषमतायें नहीं होगी। एक जाति दूसरे की पूरक होगी। बहुत हद तक गाँव के जजमानी व्यवस्था में गाँधी की सोच को देखा और समझा जा सकता है, जिसमें जाति के आधार काम और दाम बँटे हुए थे, नियमित तरीके से चलते रहते थे।

प्रश्न उठता है आज गाँव शहर तो नहीं बन पाए, लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से गाँव भी नहीं रह पाए। एक तो शहरों की तरफ बेपनाह पागलपंथी का दौर शुरू हो गया। इसका सबसे बड़ा कारण शिक्षा और स्वास्थ्य व्यवस्था की कमजोरी थी। जिस गाँव की कल्पना गाँधी ने की थी, उसमें शिक्षा और स्वास्थ्य की चाकचौबंद व्यवस्था थी, गाँव से पढ़कर निकले लोग गाँव में ही अपनी सेवा देंगे, लेकिन यहाँ तो उलटी गिनती शुरू हो गयी। लोग गाँव खेत खलिहान को बेचकर शहरों में बसने लगे। शिक्षा व्यवस्था जीवन जीने की प्रेरणा कम और आमदनी और भौतिक सुविधा ज्यादा बन गया, घरों में आधुनिक सुविधाओं की होड़ लग गयी। शहरी जीवन गाँव पर भी हावी हो गया। गाँव में मोबाइल टावर लगने लगे और गाँधी के सपनों का गाँव एक नुमायश बन गया जो जयपुर की चोखी ढाणी के शोकेस में अजायबघर की तरह दिखाया जा रहा है। लोग वहाँ जाकर, उस ग्रामीण जीवन को देखते हैं जिसकी बात गाँधी ने आदर्श गाँव के रूप में की थी।

कोई भी राजनीतिक व्यवस्था भारत को तब तक मजबूत नहीं बना सकती जब तक गाँव की मूलभूत समस्याओं को नहीं सुलझा लिया जाता। गाँव को अगर शहर बनाने की होड़ होगी तो भारत की आत्मा कुंठित होगी। भारतीय गणराज्य महज भौतिक बुनावटों से बना गाँव नहीं था, उसमें एक आत्मा का निरंतर बहाव था, जो इंसानियत को जिन्दा रखे हुए थी, उसकी शक्ति आध्यात्मिक बल पर चलती थी, वही गाँधी के सपनों का भारत था, जो पूरी तरह से तार-तार हो चुका है और जिसकी एक झलक पाने के लिए तथाकथित आधुनिक चोखी ढाणी जाकर अपनी ललक को पूरा कर तुष्ट हो रहे हैं। ❑

(राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर)

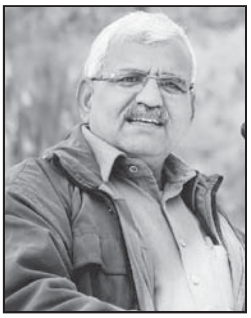

सत्व अर्थात् सार-भूत। जीवन का सार जिसमें है वह आचरण करना, अपने सत्व के अनुरूप आचरण करना। सरल शब्दों में कहें तो प्रकृति और समाज के अनुरूप जीवन-रचना। आप अत्यधिक उपभोग करते हैं तो आप किसी और का हिस्सा मारते हैं क्योंकि प्रकृति के संसाधन नियत हैं। अत: त्यागपूर्वक भोग करना सात्विक जीवन का लक्षण है। इच्छाएँ असीमित हैं अत: इन्द्रिय लोलुपता की पूर्ति सम्भव नहीं, अर्थात् संयम पूर्ण जीवन जीना चाहिए। समाज में सबको रक्षण-पोषण, योग-क्षेम नहीं मिलता तो ईर्ष्या और असंतोष उत्पन्न होता है, अत: समता, समरसता बंधुता का भाव-विस्तार होना चाहिए। भाषा, भूषा, भोजन सबमें इसी शालीनता का प्रदर्शन, ताकि सबको सुख मिले, सात्त्विकता कहलाता है।

वस्तुत: आत्मा का मूल संस्कार सात्त्विक होता है, विद्या के द्वारा हम उसका परिष्करण करते हैं जिससे हमारे क्रियाकलाप उन्नत होते हैं। जब व्यक्ति-व्यक्ति की बुद्धि, मन तथा हृदय शुद्ध और उदात्त होने लगते हैं तब कालांतर में ये मानव-समष्टि के संस्कार बन जाते हैं। इन्हीं के कारण हमारे भीतर प्रकृति-प्रदत्त पदार्थों के त्यागपूर्वक भोग का विवेक विकसित होता है। इसी से समाज और राष्ट्र में समता, समरसता तथा बंधु-भाव का भी विकास होता है। इसी भावधारा को प्रकट करता श्री हनुमान सिंह राठौड़ रचित पुस्तक 'कुटुम्ब प्रबोधन' का अन्तिम अध्याय -15 'संस्कार-गृह' लोक धर्म की स्थापना का ही प्रयास है। इस अध्याय के साथ ही 'कुटुम्ब प्रबोधन' पुस्तक के अध्यायवार प्रकाशन की शृंखला पूर्ण हो गई। - सम्पादक।

संस्कार-गृह

''**माँ** को प्रथम गुरु और घर को प्रथम पाठशाला कहते हैं। किंतु प्रश्न यह है कि प्रथम गुरु से बच्चे क्या सीखेंगे और प्रथम पाठशाला में क्या पढ़ेंगे इस पर विचार नहीं हुआ तो? यदि यह तय नहीं हुआ तो घर एक मंदिर बनेगा जो संस्कारक्षम हो, या मदिरालय बनेगा- जहाँ सब अपने अहंकार के नशे में चूर अकरणीय कृत्य करेंगे। इसलिए सबसे महत्वपूर्ण हैं माँ के संस्कार और परिवार के संस्कार।'' माँ ने आज की चर्चा की प्रस्तावना की।

''माँ, संस्कार क्या है? क्या मानसिक और भौतिक परिवेश से तात्पर्य है आपका?'' नेहा ने पूछा।

''जब किसी कार्य को हम बार-बार दीर्घावधि तक करते हैं या प्रारब्ध से प्राप्त करते हैं तब वह कार्य अवचेतन में स्थायी भाव प्राप्त करता है और प्रतिवर्ती क्रिया की तरह किसी भी परिस्थिति में वही अनुक्रिया करता है तब उस अर्जित स्व-भाव को संस्कार कहते हैं।'' माँ ने सैद्धान्तिक व्याख्या की

''माँ, दार्शनिक भाषा नहीं। हम भी तो बैठे हैं। कुछ सरलता से समझाओ ना।'' संघ मित्र बोला।

''तुमने विज्ञान में धातु-कर्म पढ़ा है ना?'' माँ ने पूछा। संघ मित्र ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया। माँ ने पुन: बात का सूत्र पकड़ा -

''संस्कार के लिए पहली बात है परिवर्तन की पात्रता। खनिज में भी धातु है किंतु प्रत्येक खनिज से धातु पृथक नहीं की जा सकती। जिसमें धातु देने की पात्रता है उसे अयस्क कहते हैं। अयस्क से धातु पृथक् करने की एक प्रक्रिया है जिसमें शोधन के विभिन्न पदों के बाद अंतत: शुद्ध धातु प्राप्त होती है। इसे संस्कार प्रक्रिया कहते हैं। इस प्रक्रम के अध्ययन में ध्यान आया होगा कि इसमें विचार शुद्ध धातु प्राप्त करने पर रहता है और प्रत्येक स्तर पर अशुद्धियों को, गौण उप-उत्पादों को हटाया जाता है। जो स्वीकार्य है उसे पुष्ट करना और अस्वीकार्य है उसे हटाते जाना जिससे अंत में वह धातु प्राप्त होती है जिसके गुण किसी भी परिस्थिति में सर्वांगत: समान होते हैं। उसे धातु का स्वभाव या गुणधर्म कहते हैं। यही संस्कार पद्धति है।''

''मैंने मानसिकता और परिवेश के सम्बन्ध में पूछा था।'' नेहा ने स्मरण करवाया।

''हाँ, मुझे याद है। बीच में ही संघ मित्र का प्रश्न आ गया था। मैंने जो पात्रता कहा वह जड़-चेतन दोनों के सन्दर्भ में है। केवल प्राणियों और उनमें भी मनुष्य की बात करें तो इसे ही मानसिकता कह सकते हैं। जब संस्कार बाहर से आरोपित होते हैं तो वे निर्जीव वस्तु में ही स्थाई रह सकते हैं, यद्यपि उन पर भी न्यूनाधिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है, अन्यथा तांबे के पूजा पात्रों को नित्य माँजना नहीं पड़ता। सजीव में संस्कार आरोपित नहीं किए जा सकते, उद्भूत ही होते हैं। संस्कारों का आरोपण नहीं हो सकता। भ्रमवश दण्ड भय से या नियंत्रित परिस्थितियों में किये जाने वाले व्यवहार को हम संस्कार मान लेते हैं। आत्मा का मूल संस्कार सात्विक ही है, उस पर अविद्या का आवरण है। इस आवरण के विदारण के लिए उपाय विद्या का वातावरण है। परिवेश विचलन से रोकता है और आचरण हेतु सम्बल प्रदान करता है।'' माँ ने समझाते हुए कहा।

''आज मानस का कोई प्रसंग नहीं है क्या?'' शिवम् ने अपनी जिज्ञासा को प्रवेश करवाया।

''मानस तो सदैव मानस में रहना चाहिए। रामचरित मानस में सद्गृह के संकेत हैं। अपने पुष्कर

के सम्बन्ध में कुछ बंधु वस्तुस्थिति पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि घर एक मंदिर बनना चाहिए किंतु यहाँ मंदिर घर बन गए हैं।'' माँ ने कहा

''पुष्कर के लिए ऐसा क्यों कहने लगे हैं माँ?'' शिवम् ने पूछा

''मंदिर में पुजारी का कक्ष होना चाहिए, यह व्यवस्था के लिए आवश्यक है, किंतु मंदिर को ही निवास स्थान बना लिया जाए तो? एक बार तो यहाँ तक भी चलेगा किंतु मंदिर का व्यावसायिक उपयोग होने लगे तो? पेइंग गेस्ट व होटल के रूप में मंदिर का उपयोग होने लगा है। नाम धर्मशाला है और शुद्ध व्यावसायिक लाभ के लिए संचालित होने लगे तो निर्माण का उद्देश्य ही समाप्त हो गया ना! विभिन्न जातियों की व्यावसायिक 'धर्मशालाएँ' हैं। मंदिर में व्यवसाय चला रहे हैं और मंदिर को व्यवसाय बना रहे हैं। घर को मंदिर नहीं बना रहे।'' माँ ने स्पष्ट किया।

''घर को मंदिर कैसे बना सकते हैं? घर में मंदिर तो देखा-सुना है।'' शिवम् ने पूछा।

''घर को मंदिर बनाने से तात्पर्य सात्त्विक वातावरण एवं क्रियाकलापों से है।'' माँ बोली

''सात्विक किसे कहते हैं।'' संघ मित्र ने जिज्ञासा रखी।

''सत्व अर्थात् सार-भूत। जीवन का सार जिसमें है वह आचरण करना, अपने सत्व के अनुरूप आचरण करना। सरल शब्दों में कहें तो प्रकृति और समाज के अनुरूप जीवन-रचना। आप अत्यधिक उपभोग करते हैं तो आप किसी और का हिस्सा मारते हैं क्योंकि प्रकृति के संसाधन नियत हैं। अत: त्यागपूर्वक भोग करना सात्विक जीवन का लक्षण है। इच्छाएँ असीमित हैं अत: इन्द्रिय लोलुपता की पूर्ति सम्भव नहीं, अर्थात् संयम पूर्ण जीवन जीना चाहिए । समाज में सबको रक्षण-पोषण, योग-क्षेम नहीं मिलता तो ईर्ष्या और असंतोष उत्पन्न होता है, अत: समता, समरसता बंधुता का भाव-विस्तार होना चाहिए। भाषा, भूषा, भोजन सबमें इसी शालीनता का प्रदर्शन, ताकि सबको सुख मिले, सात्त्विकता कहलाता है। मेरे किसी भी व्यवहार से धर्मानुसार-आचरण करने वाले किसी अन्य को कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए?'' माँ ने समझाने का प्रयत्न किया।

''तो क्या हमें गरीबी में जीना चाहिए?'' नेहा बोली।

''नहीं। गरीबी और सादगी में अंतर होता है। अपनी आवश्यकता से अधिक का भोग प्रकृति की चोरी है, और अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना सात्विकता है, क्योंकि इसी में आनंद है। आवश्यकता बढ़ाने के साथ उद्विग्नता भी बढ़ती है, इससे शांति दूर होती है, और अशांत को सुख नहीं मिल सकता। अत: आवश्यकता बढ़ाने में सुख नहीं है। अपने यहाँ सादगी की अनुपम परिभाषा दी गई है-

'सांई इतना दीजिए, जा में कुटम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ , साधु न भूखा जाय।।'

अर्थात्- परिवार की रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा की आवश्यकताएँ पूरी हों इतना उपार्जन होना ही चाहिए। अपनी भूख इतने के लिए ही होनी चाहिए तथा इतना धन अतिरिक्त अवश्य होना चाहिए ताकि समाज के अच्छे कार्यों के लिए ही जीवन समर्पण करने वाले लोगों तथा उनके कार्यों का भी रक्षण-पोषण हो सके।'' माँ ने बताया।

''आप तो रामचरित मानस से कुछ बताने वाली थी माँ ?'' शिवम् ने पूछा।

''हाँ वही बात कर रही हूँ। आप घर को क्या बनाना चाहते हैं? इसी का संकेतात्मक वर्णन सुंदरकाण्ड में है। हनुमान जी सात्विक प्रकृति के हैं। सज्जन व्यक्ति सबको अपने जैसा ही समझता है। हनुमान जी माता सीता को ढूँढ़ने के लिए लंका नगरी में प्रविष्ट हो गए। इसके उपरांत वे सीताजी का संधान कहाँ करते हैं? अपने स्वभाव के अनुसार सम्भावित स्थान के रूप में वे मंदिर-मंदिर घूमते हैं। वहाँ अपेक्षा के विपरीत क्या देखते हैं? मंदिर में साधक या संत नहीं हैं वहाँ योद्धा निवास करते हैं, विलासिता का वातावरण है-

'मंदिर-मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।
सयन किएँ देखा कपि ते ही।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही।।'

यह एक प्रकार के वर्णन की दृष्टि है। यदि मंदिर का अर्थ भवन करें तो भी अर्धनग्न नशे में धुत्त महिलाएँ यत्र-तत्र शयन किये हुए हैं, यह वर्णन आता है। योद्धा छावनी में होने चाहिए या सीमा पर, किन्तु वे भवनों में हैं, इसका तात्पर्य है- या तो वे कर्त्तव्यच्युत हैं या आवासीय भवन भी असुरक्षित हैं। ये अवस्थाएँ सभ्य समाज की नहीं हो सकती। न यह दृश्य सुरुचिपूर्ण है न सादगीपूर्ण।

दूसरी तरफ तुलसीदास जी जब विभीषण के घर का वर्णन करते हैं तब उसे मंदिर नहीं भवन कहते हैं और यह भी संकेत करते हैं कि वहाँ भवन में अलग से हरि-मंदिर बना हुआ है। यह सद् गृहस्थ के भवन का सार्थक वर्णन है-समुत्कर्ष अर्थात् भौतिक उन्नति और नि:श्रेयस अर्थात् आध्यात्मिक साधना द्वारा अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति हेतु तप का स्थान। 'सुहावना भवन' तथा 'अलग हरि मंदिर' द्वारा धर्म के दोनों लक्ष्यों को इंगित किया गया है :-

'भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।'

अर्थात्- धर्मानुसार आचरण करने वाले लोग जिस भवन में रहते हैं वह 'घर एक मंदिर' बनता है। किंतु आचरण तो घर के सदस्यों के सम्पर्क में आने पर ही समझ में आता है। प्रथम दृष्टि में तो बाह्य परिवेश ही ध्यान में आता है। परिवेश व संस्कार अन्योन्याश्रित होते हैं। जैसे लोग वैसा परिवेश तथा जैसा परिवेश वैसे लोग।' यह सुहावना भवन क्या है? उसके कुछ बाह्य लक्षण गिनाते हुए तुलसीदास जी कहते हैं कि, एक तो उसका मुख्यद्वार रामायुध अर्थात्- धनुषाकार मेहराब का था तथा उसके समक्ष तुलसी चौरा था-

'रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाई।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई।।'

यहाँ एक विशेष बात भी कही है कि इसे देख कर हनुमान जी के मन में हर्ष हुआ। अर्थात् भवन के वास्तु और प्रतीकों का भी मन पर सकारात्मक प्रभाव होता है। इन्हीं लक्षणों के आधार पर हनुमान जी ने माना कि यह किसी सज्जन का घर है और इनके साथ, भले

प्रयास पूर्वक हो, पहचान करना चाहिए क्यों कि सज्जन की पहचान सदा कार्य साधक होती है। तात्पर्य यह है कि परिवार के आचरण के साथ-साथ परिवेश भी महत्त्वपूर्ण है, दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।''

''यहाँ तक कि भवन का नाम भी मानसिकता को प्रकट करता है।'' नेहा ने कहा।

''सही है। लोग कहते हैं क्या फर्क पड़ता है। किंतु छोटी-छोटी बातों का भी बहुत अन्तर पड़ता है। आप हाउस, विला, बेंगलो, अपार्टमेण्ट कहते हैं या भवन, निवास, कुटीर, इससे आपकी मानसिकता का आकलन किया जा सकता है।'' अनन्त विजय ने कहा।

''कैसे?'' शिवम् ने जिज्ञासा प्रकट की।

''आजकल एक चलन है कि आधुनिक अर्थात् जो पश्चिम का है। अत: अंग्रेजी में नाम रखना अर्थात् अपने को आधुनिक प्रकट करना है। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं - या तो आप बिना सोचे किसी तथाकथित अभिजात्य की नकल कर रहे हैं या आप मानते हैं कि अपने देश का सब कुछ दकियानूसी, पिछड़ा है और आंग्लव्युत्पन्न सर्वश्रेष्ठ है। दोनों ही अवस्था में यह तय है कि आप अपनी जड़ों से कटे हुए हैं।'' अनन्त विजय ने समझाया।

''तो क्या अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करना पाप है?'' नेहा बोली

''नहीं पाप नहीं है। बहुभाषाविद् होना तो गुण है किंतु अपनी भाषा का गौरव होना चाहिए या नहीं? अंग्रेजी अत्यन्त अवैज्ञानिक भाषा है किंतु जिनकी यह मातृभाषा है वे उससे कितना प्रेम करते हैं, तो हमें अपनी अत्यन्त वैज्ञानिक भाषा संस्कृत, हिन्दी आदि से स्नेह करना चाहिए या नहीं। जीवंत भाषा कई नये शब्दों को ग्रहण करती है। जो शब्द हमारे यहाँ नहीं हैं उनको ग्रहण करेंगे या उसके लिए उपयुक्त शब्द गढ़ेंगे, इसमें क्या बुरा है? पर क्या अपनी भाषा का स्वरूप बिगाड़कर खिचड़ी बनाना चाहिए? सब ओर से शुभ विचार आएँ यह तो अच्छा, इसके लिए वातायन खुले रखना चाहिए किंतु क्या इसके लिए सभी दीवारें हटाकर छत को सिर पर लिये घूमेंगे? अत: विदेशी को स्वदेशानुकूल और स्वदेशी को युगानुकूल करते चलें, यही खुलापन है। अपनी भाषा, भूषा, भोजन के प्रति स्वाभिमान होना ही चाहिए।'' माँ ने बात का सूत्र पकड़ते हुए समापन किया। ❑

हम कब समझेंगे

कोटा में आत्महत्या करने वाली छात्रा कृति ने अपने सुसाइड नोट में लिखा था कि 'मैं भारत सरकार और मानव संसाधन मंत्रालय से कहना चाहती हूँ कि अगर वो चाहते हैं कि कोई बच्चा न मरे तो जितनी जल्दी हो सके इन कोचिंग संस्थानों को बंद करवा दें, ये कोचिंग छात्रों को खोखला कर देते हैं।

पढ़ने का इतना दबाव होता है कि बच्चे बोझ तले दब जाते हैं। कृति ने लिखा है कि वो कोटा में कई छात्रों को डिप्रेशन और स्ट्रेस से बाहर निकालकर सुसाईड करने से रोकने में सफल हुई लेकिन खुद को नहीं रोक सकी।

बहुत लोगों को विश्वास नहीं होगा कि मेरे जैसी लड़की जिसके 90+ मार्क्स हो वो सुसाइड भी कर सकती है, लेकिन मैं आप लोगों को समझा नहीं सकती कि मेरे दिमाग और दिल में कितनी नफरत भरी है।

अपनी माँ के लिए उसने लिखा- 'आपने मेरे बचपन और बच्चा होने का फायदा उठाया और मुझे विज्ञान पसंद करने के लिए मजबूर करती रहीं। मैं भी विज्ञान पढ़ती रहीं ताकि आपको खुश रख सकूँ।

मैं क्वांटम फिजिक्स और एस्ट्रोफिजिक्स जैसे विषयों को पसंद करने लगी और उसमें ही बीएससी करना चाहती थी लेकिन मैं आपको बता दूँ कि मुझे आज भी अंग्रेजी साहित्य और इतिहास बहुत अच्छा लगता है क्योंकि ये मुझे मेरे अंधकार के वक्त में मुझे बाहर निकालते हैं।

कृति अपनी माँ को चेतावनी देती है कि- 'इस तरह की चालाकी और मजबूर करने वाली हरकत 11 वीं क्लास में पढ़नेवाली छोटी बहन से मत करना, वो जो बनना चाहती है और जो पढ़ना चाहती है उसे वो करने देना क्योंकि वो उस काम में सबसे अच्छा कर सकती हैं जिससे वो प्यार करती है। इसको पढ़कर मन विचलित हो जाता है कि इस होड़ में हम अपने बच्चों के सपनो को छीन रहे हैं।

आज हम लोग अपने परिवारों से प्रतिस्पर्धा करने लगे है कि फलां का बेटा-बेटी डॉक्टर बन गया, हमें भी डॉक्टर बनाना है। फलां की बेटी-बेटा सीकर/कोटा हॉस्टल में है तो हम भी वही पढ़ाएँगे,चाहे उस बच्चे के सपने कुछ भी हो, हम उन पर अपने सपने थोंप रहे हैं।

आज हमारे स्कूल(कोचिंग संस्थान) बच्चों को परिवारिक रिश्तों का महत्त्व नहीं सीखा पा रहे, उन्हें असफलताओं या समस्याओं से लड़ना नही सीखा पा रहे। उनके जेहन में सिर्फ एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा के भाव भरे जा रहे हैं जो जहर बनकर उनकी जिंदगियाँ लील रहा है। जो कमजोर है वो आत्महत्या कर रहा है व थोड़ा मजबूत है वो नशे की ओर बढ़ रहा है। जब हमारे बच्चे असफलताओ से टूट जाते है तो उन्हें ये पता ही नही है कि इससे कैसे निपटा जाएँ। उनका कोमल हदय इस नाकामी से टूट जाता है इसी वजह से आत्महत्या बढ़ रही है।

APUS Abhyas Vargh held at Mantralayam

APUS Abhyas Wargh inaugurated by Shri Mahendra Kapoor and Shri Shivanand Sindankera on 01 may Shri Shivanand Sindankera took the inauguration session. He said at first we are teachers, then we are the members of Andhra Pradesh Upadhyaya Sangham. We must teach the children about our culture and value based education of our nation. As a teacher we must develop patriotism among children. We have 31 affiliated organisations and near about 10 lakh members in our country. We must increase our membership ship and we must reach every school in the state.he advised to celebrate karthavya bodh divas, Varsh Pratipada (new year), Guruvandhan karya-krama and also organise on Shaswat Jeevan Mulya.

In the Second session karnool jilla sangh chaalak Shri vijayanand told about karya-karta-paryatn."He briefed about the importance and his role in organisation. A kaaryakarta must have sweet language when he Speak to others, and he must visit houses of union members. And also he must have a bag on his shoulder for whatever the representations come, he must put into that bag. As a kaarykarta he must do the hardwork. He must feel happy first. He must have individual discipline and moral values. A kaaryakarta is always equal to god.

In the third session vibhag pracharak Shri Navin told the story about Jallian Wala Bagh he told the story very effectively.

In the forth session state executive meeting was held. APUS president Shri Sravan & General secretary Shri Ravi prasad took the session. They took the reports of all districts. And both briefed what we did in the last 06 months. In the evening we went to Shri Raghavendra swamy temple for darshan.

In the evening core committee meeting held with Shri mahendra kapoor and Shri Shivanand, Shri Kapoor advised us to core committee meeting must held in every two months.every body must be present and we must ask about whoever is absent. Union must reach at school level. We must have a member at every school in the state. We must increase mahilas (women) in union.we must plan for membership campaign and we must increase membership in the current year. We used to celebrate karthavya bodh diwas, guru vandhan kaaryakram. We must celebrate mahila dinotsavam on Phule birthday. mahila kaaryakartas must go for membership. We must try to organise meetings with mahilas

On day 2,first session took by Shri Suresh, asst. prof. from kurnool. He gave a brief note on New education policy. He briefed about our ancient education system in India. He also told how the Britishers introduced their education system in India. In the second session we took all the teachers and educational problems from the districts and we gave some solutions to some problems. We told them to take up all the problems to higher authorities.

In the last i.e Samaarop session taken by Shri Mahendra Kapoor. A teacher is a symbol of sacrifice. Our nation gives importantace to the sacrifice. In india around one crore teachers are working and almost 30 crores students are studying. Teaching profession is not only for earning money but also to give a value based education to the children. We must teach our culture and traditions to the children. If our nation to become strong then every teacher must get respect. Teachers are not getting respect since last seventy years. We are seeing lot of incidents like teachers raping students, parents raping students as a teacher we should protest such incidents. A teacher must be a role model and he must set an example to the society.

JCU Shaikshik Sangh Presents A Charter of Demand to their VC

Jammu Central University Shikshak Sangh presented a charter of demands on 21 May 2019 to the university Vice Chancellor, Prof. Ashok Aima Highlighting the interests of academic fraternity for a better academic environment in the premises of the Central University.

The Charter of the demands included issues like Ph.D. Increment, release of pending allowances, counting of past services, residence facilities, medical facilities, day care centre and facilities to be given to the CLU facility member working under specially abled category.

The office bearer of JCUSS namely Prof. Deepak Pathania (President), Dr. Vandana Sharma (Vice President), Dr. Pankaj Mehta (General Secretary), Dr. Ajay Kumar Singh (Joint Secretary), Dr. Vinay Shukla (Joint Scretary), Ramesh Chander (Press Secretary), were among those present in the delegation, which called on VC and submitted the charter of demands.

गतिविधि

दिल्ली अध्यापक परिषद का प्रदेश कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग सम्पन्न

दिल्ली अध्यापक परिषद (सम्बद्ध : अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) का द्वि दिवसीय (19 व 20 मई 2019) प्रदेश कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग 'गोवर्धन लाल त्रेहन सरस्वती बाल मंदिर उच्च माध्यमिक विद्यालय' नेहरू नगर, लाजपत नगर, दिल्ली में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का शुभारम्भ अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर द्वारा दीप-प्रज्वलन के साथ प्रारंभ हुआ।

प्रथम सत्र में राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने कार्यकताओं का आह्वान किया कि आप पूरी तन्मयता के साथ वर्ग में रहें और सोशल मीडिया से दूर रहकर अभ्यास वर्ग का भरपूर लाभ उठाएँ। उन्होंने कहा कि समाज में शिक्षक का सम्मान पुनर्स्थापित हो इसके लिए शिक्षक को अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहना होगा। उन्होंने कहा कि अकेले चलना आसान है लेकिन परिणाम प्राप्त करने के लिए सामूहिकता में चलना होगा।

द्वितीय सत्र का विषय 'कार्यवृद्धि एवं प्रवास', दिल्ली अध्यापक परिषद के अध्यक्ष वेदप्रकाश ने लिया, उन्होंने कहा कि शिक्षकों के बीच सजीव संपर्क तभी संभव है जब हम विद्यालयों में प्रवास करेंगे। इसके लिए उन्होंने कहा कि प्रथम पाली के कार्यकर्ता द्वितीय पाली में प्रवास करें और द्वितीय पाली के प्रथम पाली में। साथ ही विद्यालयों से समस्या लेकर उसका समाधान करने की दिशा में प्रयास होने से, जिले में अधिकारियों से सतत मिलकर समस्या का निराकरण कराने आदि के द्वारा कार्यवृद्धि संभव है।

तृतीय सत्र का विषय 'प्रवास और सदस्यता' पर प्रकाश डालते हुए परिषद के संरक्षक जयभगवान गोयल ने कहा कि हमारा उद्देश्य सिर्फ सदस्यता बढ़ाने के साथ-साथ विद्यालय और छात्र की गुणवत्ता को भी बढ़ाना है, लेकिन साथ ही इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि 'संघे शक्ति कलियुगे'।

चतुर्थ सत्र में अनिल कुमार ने 'सेवा शर्त और नियम' विषय पर कार्यकर्ताओं को महत्त्वपूर्ण जानकारी दी। कार्यकर्ता स्वयं को निपुण कर तथा इसमें और जानकारी लेकर संगठन के विस्तार में सक्षम होंगे।

पंचम सत्र का विषय 'वार्षिक कार्ययोजना' पर श्री महेन्द्र कपूर ने वर्ष भर की कार्ययोजना बनाने पर बल देते हुए अपने सालभर के क्रियाकलापों (कर्तव्य बोध दिवस, कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग, भारतीय नववर्ष, गुरुवंदन, शैक्षिक विषय पर गोष्ठी, महिला सम्मेलन, शिक्षक सम्मान के लिए धरना, प्रदर्शन, ज्ञापन आदि) की सूची तिथि अनुसार निर्धारित कर काम करने की दिशा में सोचने के लिए प्रोत्साहित किया।

षष्टम सत्र निकाय अनुसार सम्पन्न हुआ, जिसमें अध्यापकों की विभिन्न समस्या व समाधान के तरीकों पर खुली चर्चा हुई, साथ ही सदस्यता के लिए योजना पर भी सभी की राय ली गई। निकाय/जिले/जोन की मासिक बैठक नियमित हो, इस पर भी चर्चा हुई।

दूसरे दिन सप्तम सत्र 'कार्यकर्ता एवं व्यवहार' का विषय रोशन लाल ने रखा। उनका कहना था कि भारत की आत्मा, भारतीय चिंतन और अध्यात्म में बसती है। भारतीय अध्यात्म को समझने के लिए उन्होंने राधाकृष्णन की पुस्तक 'Hinduism' को पढ़ने का आग्रह किया।

अष्टम सत्र दायित्व अनुसार (अध्यक्ष, मंत्री, संगठन मंत्री तथा अन्य दायित्ववान कार्यकर्ताओं का) रहा। इसमें अपने दायित्व से पूर्ण परिचय व मेरे द्वारा दायित्व की पहचान बने इसके लिए करणीय कार्यों पर चर्चा हुई।

नवम सत्र 'मीडिया और हम' विषय पर बोलते हुए राजीव तुली ने विस्तार से मीडिया के महत्त्व को रेखांकित किया और उसकी आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने मास मीडिया का जिक्र करते हुए सोशल मीडिया की व्यापकता को गहराई से समझने पर बल दिया। उनका कहना था कि मीडिया सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र नहीं है बल्कि नैरेटिव भी सेट करती है, जिसकी परख करने की जरूरत है। इस अवसर पर अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की महिला सचिव, भास्कराचार्य महाविद्यालय की एसोसिएट प्रोफेसर एवं टी वी पैनलिस्ट डॉ गीता भट्ट ने भी मीडिया के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए अपने अनुभव साझा किए।

दशम सत्र में परिषद के महामंत्री राजेन्द्र गोयल ने वर्ग का पूरा लेखा-जोखा रखा।

समापन सत्र में रोशन लाल ने कार्यकर्ताओं का उत्साहवर्धन करते हुए कहा कि अभ्यास वर्ग को तभी सफल माना जायेगा जब हर एक कार्यकर्ता कम से कम महीने में एक अध्यापक को अपने संगठन से जोड़ेंगे और उसे संगठन अनुकूल कार्यकर्ता भी बनाएँगे इससे निश्चित ही संगठन का विस्तार भी होगा और अच्छे गुणी कार्यकर्ता से संगठन का उद्देश्य भी पूर्ण होगा।

धन्यवाद ज्ञापन और अध्यक्षीय भाषण वेद प्रकाश द्वारा किया गया। कल्याण मंत्र के साथ अभ्यास वर्ग संपन्न हुआ।

शैक्षिक महासंघ महाराष्ट्र इकाई की शिक्षामंत्री से भेंटवार्ता

सरकार की ओर से सातवें वेतन आयोग का गत 8 मार्च को जीआर जारी करने के बाद अचानक 10 मई 2019 को फिर से शुद्धिपत्रक निकाला गया। इसमें अनेक विसंगतियाँ होने और उनसे शिक्षकों का नुकसान होने की संभावना को देखते हुए अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ महाराष्ट्र इकाई के शिष्टमंडल ने मुम्बई में प्रो. ए.पी. कुलकर्णी के नेतृत्व में 17 मई को शिक्षा मंत्री विनोद तावडे और अधिकारियों के साथ बैठक की। इस अवसर पर शिक्षा मंत्री तावडे और अधिकारियों ने सकारात्मक निर्णय लिये जाने का आश्वासन दिया। बैठक में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ये जुड़े प्रत्येक विश्वविद्यालय के स्थानीय शिक्षक संगठन के पदाधिकारी उपस्थित थे। संपूर्ण राज्य के शिक्षकों का रोष उनके ध्यान में लाकर दिया गया। यह मामला हल नहीं किया गया, तो राज्य स्तरीय आंदोलन छेड़ने का इशारा भी दिया गया। वार्ता में राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. कल्पना पाण्डे अखिल भारतीय शिक्षण प्रमुख डॉ. शेखर बसंत चन्द्रात्रे, राज्य इकाई संयोजक डॉ. विवेक जोशी सहित सभी विश्वविद्याल इकाइयों के अध्यक्ष और मंत्रियों ने भाग लिया।